जनवरी - मार्च 2002 वर्ष : 34 ❊ अंक : 1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

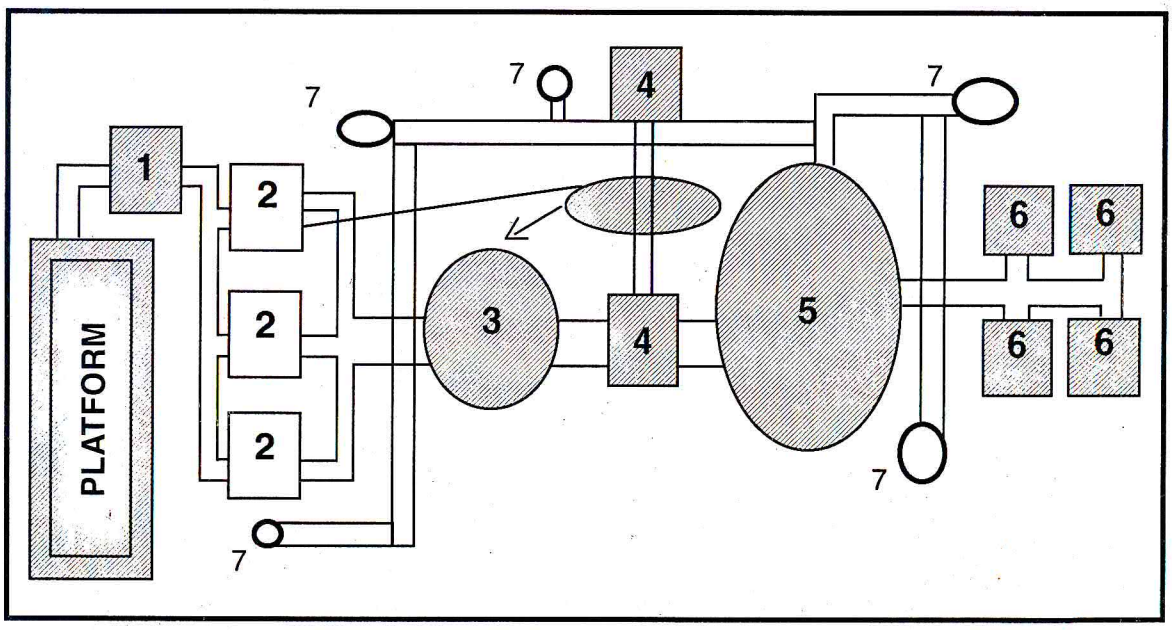

भा. प. अ. केंद्र में विकसित बायोगैस संयंत्र का रेखाचित्र

आवरण पृष्ठ पर दिये चित्र का विवरण :

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में विकसित बायोगैस संयंत्र के विभिन्न घटक :-

1) ठेस अपशिष्ट को पीसने के लिए मिक्सर / पल्पर (5 हॉर्स पॉवर की मोटर)
2) तीन प्रिमिक्स टैंक
3) पूर्वपाचक (प्रि-डाइजेस्टर) टैंक
4) पानी गर्म करने के लिए सौर हीटर
5) 35 घनमीटर का मुख्य डाइजेशन टैंक
6) खाद के 4 गड्ढे
7) प्लांट में तैयार बायोगैस के उपयोग हेतु गैस लैंप

भा. प. अ. केंद्र के परिसर में कार्यरत यह संयंत्र जैव अपशिष्ट (फल, सब्जियों के पत्ते, छिलके इत्यादि) का उपयोग बायोगैस तैयार करने में करता है ।

लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी ।

- संपादक

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 34 अंक 1

जनवरी-मार्च 2002

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री रमेश चंद्र पंत
श्री नंद लाल सोनी
श्री गोरा चक्रवर्ती
श्री मनीश कुमार
श्री करूनेश कुमार

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री दिनेश कुमार शुक्ल

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. टेक्निशियम तथा टेक्निशियम संकरों से रोगों की जांच तथा उपचार 5
   - यशवंत नाईक

2. कैसे शुरू हुआ धरती पर जीवन ? 8
   - ओ. पी. खंडेलवाल

3. आवश्यक है राष्ट्रीय पुष्प कमल का संरक्षण 14
   - नरेंद्र चंद्र तिवारी

4. ओजोन परत का निर्माण व क्रियाकलाप 20
   - शिवेंद्र कुमार पांडे

टिप्पणियां

1. आतंक खिलते हुए फूलों का 25
   - अरुणिम वेद

2. अणुओं की खेती 26
   - डॉ. आर. एन. पांडेय

3. वर्मीकल्चर 27
   - डॉ. आर. एन. पांडेय

4. कार्बनिक रसायनों से फैलता प्रदूषण 29
   - प्रो. सुरेश गर्ग

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

विज्ञान कविता

1. ज्ञान स्वरूप **33**
- हेमवती नंदन 'हेम'

2. प्रकाश **33**
- संजय गोस्वामी

विज्ञान कथा

1. पिघलता ग्लेशियर **34**
- हरीश गोयल

विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केंद्र से **39**

● अन्य विज्ञान समाचार **40**

हिं. वि. सा. परिषद वार्षिक प्रतिवेदन (2000-01 व 2001-02) **45**

कुछ फूल : कुछ कांटे **48**

प्रिय पाठक 'वैज्ञानिक' का यह अंक आपको कैसा लगा । कृपया अपनी सम्मतियां और अपने सुझाव हमें अवश्य लिख भेजें । हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतजार रहेगा ।

– संपादक

संपादकीय

"विज्ञान एवं तकनीकी शोध कार्यक्रमों में निजी क्षेत्र की भूमिका"

हर राष्ट्र के विज्ञान एवं तकनीकी शोध कार्यक्रम देश में उपलब्ध वैज्ञानिक मानव शक्ति, इन्फ्रास्ट्रक्चर, प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से प्रभावित होते हैं। किसी भी राष्ट्र के तकनीकी विकास का सीधा संबंध वहां के आर्थिक विकास से जुड़ा रहता है। समाज तकनीकी विकास को सही रूप में तभी समझ पाता है जब उसका समुचित आर्थिक विकास भी हो। और आर्थिक विकास के लिए विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकियों को अपनाना जरूरी है क्योंकि वे दक्ष होती हैं। वैज्ञानिक शोधों के परिणामस्वरूप नयी-नयी तकनीकें जन्म लेती हैं और जैसे जैसे इन तकनीकों में प्रौढ़ता आती है, इनके उपयोग से विज्ञान के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं। अत: इन दोनों का विकास एक दूसरे का संपूरक है। और इनके लिए आवश्यक है समुचित पूंजी निवेश जो विकसित राष्ट्र काफी सूझबूझ के साथ लगा रहे हैं।

भारत में वैज्ञानिक मानव शक्ति (संसाधन) बहुत अधिक होने के बावजूद अपेक्षित परिणाम देखने को नहीं मिल रहे हैं। सूचना तकनीक के क्षेत्र में अग्रणीय होने पर भी शोध प्रकाशन की दर में अभी हाल में 7% की कमी देखी गयी है। इसका एक कारण स्पष्टत: इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम पूंजी निवेश का लगना है। हालांकि यह उल्लेखनीय है कि जब हमने कृषि विज्ञान एवं तकनीकी, सूचना तकनीकी और उच्च शिक्षा में सूझबूझ के साथ पूंजी निवेश बढ़ाया तो 'हरित क्रांति' व 'सूचना क्रांति' जैसी सफलताएं मिलीं। इसमें सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रयास सराहनीय हैं। अभी हाल में अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान बोर्ड की रिपोर्ट से पता चला है कि चीन का वैज्ञानिक शोध आउट पुट पिछले दो दशकों में तीन गुना हो गया है। इसी प्रकार लैटिन अमरीका में यह दुगने से ज्यादा पाया गया। मलेशिया, ताईवान, कोरिया आदि एशियाई देश भी पीछे नहीं हैं। इन सभी ने इस दौरान इन क्षेत्रों में पूंजी निवेश को काफी बढ़ाया है। चीन ने तो जैव तकनीकी तथा अंतरिक्ष खनन जैसे क्षेत्रों को भी बड़ी सूझबूझ के साथ चुना है ताकि वे विश्व में आर्थिक स्पर्धा का मुकाबला कर सकें।

अब जब भारत दसवीं पंच वर्षीय योजनाओं की शुरूआत कर रहा है तो उसे विज्ञान तथा तकनीकी के उपयुक्त क्षेत्रों को चुनना चाहिए। अभी तक की योजनाओं से यह काफी हद तक स्पष्ट हो गया है कि केवल सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के निवेश पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि वहां की कार्य संस्कृति के कारण महत्वपूर्ण वैज्ञानिक शोधों तथा तकनीकी विकासों के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हम आर्थिक स्पर्धा एवं गुणता से दूर ही रह जाते हैं। विकसित राष्ट्रों की भांति यहां पर भी निजी क्षेत्रों की कंपनियों तथा व्यापारिक संस्थानों को उनकी अर्जित पूंजी का उचित भाग अनुसंधान एवं विकास कार्यों में लगाना आवश्यक है। तभी वे सही दृष्टि में, राष्ट्रीय विकास में संपूरक की अपनी भूमिका निभा पायेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि देश अपनी राष्ट्रीय परियोजनाओं तथा नीतियों को कुछ ऐसा मोड़ दे ताकि निजी क्षेत्र इस ओर स्वत: आकर्षित होने लगें। जहां एक ओर उच्च शिक्षा, मूलभूत अनुसंधानों में सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों की भूमिका अहम् है वहीं अनुप्रयुक्त विज्ञान तथा विकसित तकनीकों को जनजीवन के लाभों के लिए बाजार में लाने में निजी क्षेत्र अधिक सक्षम रहेगा। निसंदेह, यह, वहां की कार्य संस्कृति का परिणाम होगा। विकसित राष्ट्रों में विज्ञान एवं तकनीकी विकास के लिए वहां के वैज्ञानिकों/इंजीनियरों/प्रौद्योगविदों को परियोजना विशेष के लिए निजी क्षेत्र एक अनुबंध के तहत अनुदान देते हैं तथा उनका मॉनीटरन काफी कठोरता से करते हैं ताकि अपेक्षित परिणाम समय पर मिल सके और यदि परियोजना उपयुक्त नहीं लगे तो यथासमय उसको बंद करने के लिए निर्णय लेने में कोई हिचकिचाहट भी नहीं करते। इन अनुबंधों के तहत वैज्ञानिकों

या अनुबंधित इंजीनियरों की पूर्ण जिम्मेदारी होती है, और वे इसके प्रति पूर्णत: गंभीर रहते हैं न कि सरकारी संस्थानों में सामान्यत: व्याप्त 'चलता है' प्रवृति के कारण परियोजना के कार्य में ढिलाई बरतते हैं।

यह एक आम धारणा है कि चूंकि हमारे देश के प्रतिभाशाली वैज्ञानिक/प्रौद्योगविद विकसित राष्ट्रों में पलायन कर जाते हैं अत: विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में निवेश की गयी राष्ट्रीय पूंजी का हमारे आर्थिक विकास को समुचित लाभ नहीं पहुंचता है। परंतु हमें इस बात को भी अनदेखा नहीं करना चाहिए कि जब प्रतिवर्ष कई सौ प्रतिभाशाली/दक्ष वैज्ञानिक/इंजीनियर स्वदेश आने की चाह रखते हैं तो क्या हमारे पास उनके लिए भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल उचित 'जॉब' का प्रावधान है ? यह एक विचारणीय विषय है। अत: विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय संस्थानों/निजी क्षेत्रों के अनुसंधान इकाइयों के स्तर पर अच्छी शोध सुविधाओं के साथ-साथ स्वस्थ कार्य संस्कृति एवं माहौल बनाने की जिम्मेदारी हमारे राष्ट्रीय परियोजनाकारों के ऊपर आती है। यह उल्लेखनीय है कि अन्य कई विकासशील राष्ट्रों ने जब विज्ञान एवं तकनीकी के लिए राष्ट्रीय पूंजी निवेश को बढ़ाया तो वहां से पलायित वैज्ञानिक काम करने स्वदेश आये हैं क्योंकि अपनी जगह/मिट्टी की बात कुछ और ही होती है। इसमें संदेह नहीं कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति का अनुमान वहां पर प्रौद्योगिकी विकास पर लगायी पूंजी से लग सकता है क्योंकि यह विकास ही उन्नत सभ्यता का गति चक्र है।

यह समय की मांग है कि सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के संस्थानों में व्यवस्थापन, संरचनात्मक समूहों की कार्यनीतियों, काम के प्रति मूल दृष्टिकोण (वर्क इथोस) में परिवर्तन की आवश्यकता है तो वहीं निजी क्षेत्रों के संस्थानों/इकाइयों को राष्ट्रीय संस्थानों में विकसित उपयोगी तकनीकों को व्यापारिक स्वरूप देने के लिए पहल करनी चाहिए। हो सकता है कि आरंभ के प्रयासों में उन्हें अपेक्षित सफलता अथवा लाभ न मिल पाये परंतु जब निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के संबंध बढ़ेंगे, एक-दूसरे की की कार्य संस्कृति को समझने लगेंगे तो निश्चित तौर पर निजी क्षेत्रों की प्रबंधन कुशलता एवं कार्य शैली के प्रभाव से सार्वजनिक/सरकारी क्षेत्रों के कार्यकर्ता अनुबंधों के तहत गंभीर होने लगेंगे जिसका समुचित लाभ होगा और इस तरह राष्ट्रीय विकास को बल मिलेगा। साथ ही गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्धि से हमारे उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बनेंगे। राष्ट्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल मांग / खपत को मद्देनजर रखते हुए निजी संस्थानों को प्रोजेक्ट/विकास कार्यों को चुनकर राष्ट्रीय संस्थानों के प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों अथवा अन्य प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों से अनुबंध के तहत शोध एवं विकास कार्य के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इन कार्यों में उनका पूंजी निवेश निसंदेह मील के पत्थर साबित होंगे।

प्रस्तुत अंक वर्ष 2002 का जनवरी-मार्च (34/1) अंक है। इसमें सदैव की भांति लेख-टिप्पणियों के साथ विज्ञान कथा, कविताओं व समाचारों का समावेश किया गया है। हिं. वि. परिषद के, वर्ष 2000-01 व 2001-02 के दो वार्षिक प्रतिवेदन भी समाहित हैं। *वर्ष 2001 की डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता के परिणाम भी घोषित किये जा चुके हैं। विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं :- डॉ. आदेश कुमार (प्रथम), श्रीमती उर्मिला तिवारी (द्वितीय), डॉ. अनिल कुमार पब्बी एवं डॉ. संजीव कुमार गुप्ता (तृतीय) और श्री अशोक कुमार, डॉ. रमेश बाबू एवं डॉ. मनोज ढ़ोलाखंडी (प्रोत्साहन)।* दुर्भाग्यवश इस वर्ष अहिंदी वर्ग में कोई पुरस्कार नहीं मिला। कुछ समय से इस प्रतियोगिता में लेखों की संख्या में कमी पायी गयी है। सभी पाठकों से निवेदन है कि हर वर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए अधिक से अधिक लोगों को प्रेरित करें। साथ ही इसे अधिक लोकप्रिय बनाने हेतु हमें अपने सुझाव भी भेजें। वर्ष 2002 के लिए प्रविष्टियां 15 दिसंबर 2002 तक व्यवस्थापक, श्री कुलवंत सिंह, पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), भा प अ केंद्र, मुंबई-400085 के पास भिजवाने का प्रयत्न करें। यह हिंदी साहित्य सृजन में आप सभी का अमूल्य योगदान रहेगा। नव वर्ष के लिए हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।

– डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

टेक्निशियम तथा टेक्निशियम संकरों से रोगों की जांच तथा उपचार

यशवंत नाईक
रेडियोआइसोटोप फार्मास्युटिकल्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085

टेक्निशियम जनित नाभिकीय औषधियों के द्वारा आज चिकित्सा के क्षेत्र में एक क्रांति सी आ गयी है। विशेष रूप से रोग का पता लगाने में इन रेडियो औषिधियों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। बहुतायत ऑक्सीजन अवस्था में विद्यमान होने के कारण टेक्निशियम के रासायनिक गुण विस्तृत हैं, इसके फलस्वरूप टेक्निशियम रेडियो औषधियां मानव शरीर के प्राय: सभी अंगों में पहुंचायी जा सकती हैं। दूसरी विशेषता है टेक्निशियम-11 रेडियोसमस्थानिक की रेडियोधर्मिता। यह समस्थानिक सिर्फ गामा किरणें उत्सर्जित करता है, तथा उनकी ऊर्जा इतनी अधिक है कि शरीर के अंदर से बाहर निकल सके, इससे गामा कैमरा से चित्र खींचने में आसानी रहती है और रोगी को विकिरण से नुकसान भी कम होता है। इन दोनों विशेषताओं के कारण टेक्निशियम-11 को नाभिकीय औषधि का स्तंभ माना गया है। प्रस्तुत लेख में टेक्निशियम की इन्हीं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

परमाणु ऊर्जा के विभिन्न कार्यक्रमों में रेडियो आइसोटोप विशेष स्थान रखते हैं। परमाणु ऊर्जा उत्पादन के साथ-साथ इन्हें विभिन्न अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रमों का आधारस्तंभ भी माना जा सकता है। जहां एक ओर परमाणु भट्टी से प्रदूषण रहित ऊर्जा प्राप्त होती है, वहीं आइसोटोप विभिन्न जनकल्याण कार्यक्रमों में उपयोगी साबित हुए हैं, जैसे, निर्जमीकरण, धान्य भंडारण, उद्योग तथा रेडियोऔषध।

टेक्निशियम टंकित विभिन्न रेडियोऔषधियों का उपयोग :

टेक्निशियम टंकित विभिन्न रेडियोऔषधियों का उपयोग रोगों का पता लगाने तथा रोग निवारण के लिए किया जाता है। रोगों के उपचार के लिए उपयुक्त टेक्निशियम के रेडियो आइसोटोप (जैसे Tc-99m, Tc-94, Tc-100) बहुत उपयोगी पाये गये हैं। इन औषधियों को बनाते वक्त टेक्निशियम के आइसोटोप की नाभिकीय गुणवत्ता के साथ-साथ, औषधियों की विशिष्ट जैव रसायनिक क्रियाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन दोहरे गुणों से रोग ग्रसित ग्रंथि का चित्रण एवं रोग का विश्लेषण कुछ ही मिनटों में कर रोग निवारण की प्रक्रिया शुरू करना संभव हो सका है।

आखिर यह कैसे किया जाता है ?

टेक्निशियम टंकित रेडियोऔषधि रोगी को सुई अथवा गोली के रूप में दी जाती है। कुछ ही मिनटों में यह औषधि अपनी विशिष्ट जैवरसायनिक प्रक्रिया से लक्ष्य की गयी ग्रंथि से जुड़ जाती है। विभिन्न ग्रंथियों के लिए विशिष्ट टेक्निशियम गामा विकिरण उत्सर्जित करता है। ये किरणें मनुष्य के शरीर को भेदकर बाहर निकलती हैं। इन गामा किरणों को विकिरण उपकरण द्वारा परख कर संगणक के द्वारा ग्रंथि का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है। अत: शरीर की चीरफाड़ किये बिना ही ग्रंथि की दशा व उसकी कार्य क्षमता का ज्ञान हो जाता है तथा उसका उपचार किया जाता है। इन उपचारों से कोई पीड़ा अथवा कष्ट का अनुभव नहीं होता।

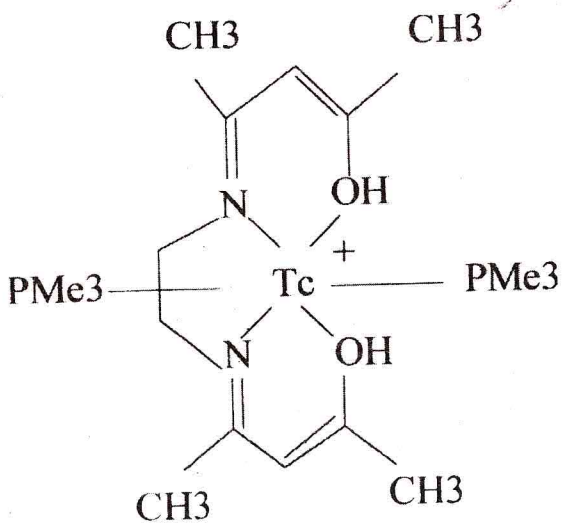

चित्र-1 : Tc (III) कांप्लेक्स की संरचना

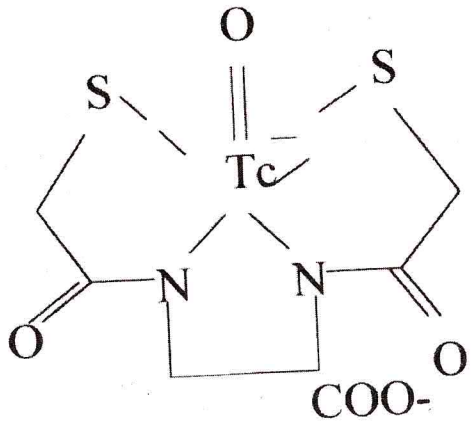

चित्र-2 : वृक्कीय चित्रण के लिए 99m Tc-Coo-[DADS] कांप्लेक्स

टेक्निशियम टंकित रेडियोऔषधियों के प्रकार :

जैवरसायनिक गुणवत्ता के आधार पर टेक्निशियम टंकित रेडियोऔषधियों को दो भागों में बांटा जा सकता है;

1) वे औषधियां जिनका शरीर में जैवरसायनिक वितरण रक्त के बहाव पर निर्धारित है ।
2) वे औषधियां जिनका शरीर में जैवरसायनिक वितरण विशिष्ट जैवरसायनिक क्रिया (Receptor Binding Interaction) पर निर्धारित हो ।

टेक्निशियम का रेडियोऔषध में स्थान :

टेक्निशियम का रेडियोऔषध में विशेष स्थान है । यह इसलिए कि टेक्निशियम के विस्तृत रसायनिक गुण हैं । विभिन्न टेक्निशियम टंकित संकर तैयार कर उनका उपयोग टेक्निशियम टंकित विभिन्न रेडियोऔषधियों के बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है ।

टेक्निशियम टंकित जैवरसायनों की संरचना कर शरीर में स्थित विभिन्न रसायनों के साथ उसकी क्रिया के द्वारा रोग ग्रसित ग्रंथि में जैवरसायनों की मात्रा तथा ग्रंथि का चित्रण करना संभव है । आवश्यकता के अनुरूप उपचार के लिए इन टेक्निशियम टंकित संकर की ग्रंथि में उपस्थित जैवरसायनों के साथ रसायनिक क्रिया के कारण निश्चित समय के लिए बंधित रहता है । इस समय के दौरान टेक्निशियम द्वारा उत्सर्जित विकिरण की सहायता से तथा संगणक के उपयोग द्वारा सूक्ष्म चित्रण प्राप्त करते हैं । इस तरह के अध्ययनों से आज मानव शरीर के लगभग सभी अवयवों का चित्रण संभव है । हालांकि प्रत्येक ग्रंथि के लिए एक निश्चित टेक्निशियम टंकित जैवरसायन की आवश्यकता पड़ती है । टेक्निशियम आज आसानी से उपलब्ध होने के कारण इस तरह के उपचार और भी आसान हो गये हैं ।

इस तरह मानव जीवन को निरोगी रखने में टेक्निशियम-99 महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है तथा रोगियों के लिए नयी आशा की किरण जाग उठी है । विभिन्न हृदय रोगों तथा शरीर के अन्य अवयवों से रक्त प्रवाह में अड़चन का पता टेक्निशियम-99 टंकित संकरों के उपयोग से लगाया जा सकता है । हालांकि इस तरह के कार्यों के लिए टेक्निशियम-99 के साथ-2 अब टेक्निशियम

के अन्य समस्थनिकों जैसे टेक्निशियन-94 का उपयोग भी किया जा रहा है जोकि पॉजीट्रॉन उत्सर्जित करता है। इस तरह के पॉजीट्रॉन उत्सर्जक के उपयोग से हृदय की कार्यक्षमता तथा खून के बहाव का सही चित्रण रक्त कैंसर के इलाज के साथ किया जा सकता है। गौरतलब है कि समस्थानिकों की रसायनिकों की रसायनिक प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं होता है।

टेक्निशियम-99 टंकित संकरों के रेडियोऔषध के क्षेत्र में अनुसंधान :

1980 के दशक से अब तक टेक्निशियम टंकित जैवरसायनों के अध्ययनों में काफी रुचि बढ़ी है तथा इस क्षेत्र में अनुसंधान की बदौलत कई महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की गयी हैं।

टेक्निशियम आवर्त सारिणी में द्वितीय सारिणी (transition series) के मध्य स्थित होने के कारण विभिन्न संकर तथा यौगिक बनाता है, जिनमें Tc की ऑक्सीकरण अवस्था +7 से -1 के बीच होती है जिसके कारण इसकी काफी विस्तृत रसायनिक विशेषताएं होती हैं। इन विशेषताओं के कारण ही इसके द्वारा बनाये गये विभिन्न संकर तथा यौगिकों का उपयोग, विभिन्न जैव-रसायनिक के द्वारा मानव शरीर के विभिन्न अवयवों का चित्रण तथा उनकी कार्यशैली का अध्ययन, चीरफाड़ किये बिना संभव हो गया है। Tc (V), Tc (IV), Tc (III) Tc (I) के संकर काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन टेक्निशियम टंकित संकरों की एक विशेषता यह भी है कि ये एक विशेष अम्लता (pH) क्षेत्र में ही स्थिर होते हैं। अतः इलेक्ट्रॉन का शोषण तथा निष्कासन इन संकरों के द्वारा काफी तेज होता है तथा लक्षित अवयव का चित्रण टेक्निशियम-99 द्वारा उत्सर्जित गामा विकिरणों द्वारा व उसका रोग निदान तुरंत किया जा सकता है। समय के साथ मानव शरीर से इसका निष्कासन हो जाता है। टेक्निशियम-99 को इस तरह शरीर के किसी भी अवयव पर लक्षित किया जा सकता है। चित्र-1 में टेक्निशियम-99 टंकित संकर दिया है जिसके उपयोग से हृदय से रक्त प्रवाह का सूक्ष्म चित्रण संभव है। इसी तरह चित्र-2 में टेक्निशियम-99 टंकित संकर दिखाया गया है जिसके उपयोग से वृक्कीय (गुरदा) चित्रण (Renal Imaging) की जा सकती है। इसी तरह विभिन्न टेक्निशियम-99 टंकित संकरों का निर्माण संभव है, जिनके द्वारा अन्य ग्रंथियों का चित्रण तथा उपचार किया जा सकता है।

अतः हम पाते हैं कि शरीर में पाये जाने वाले विभिन्न जैवरसायनों के सांद्रण का आकलन तथा चित्रण इन टेक्निशियम-99 टंकित संकरों के द्वारा काफी तेज होता है। इस पद्धति को रडियो इम्युनोएसे तथा कंप्यूटेड टोमोग्राफी कहा जाता है। इस प्रकार टेक्निशियम-99, रोगों की जांच तथा उपचार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

❑❑❑

कैसे शुरू हुआ धरती पर जीवन ?

ओ. पी. खंडेलवाल
16-E, साधना नगर, 101, हेप्पी अपार्टमेंट,
इंदौर (म.प्र.) - 452 005.

वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार पृथ्वी पर जीवन की शुरूआत करीब 355 करोड़ वर्ष पहले हुई होगी। पानी की सबसे छोटी बूंद ने एक पतली झिल्ली का कार्य किया होगा, जिसमें कई जैव रसायन एकत्रित हो गये होंगे जिससे जीवन का रूपांतरण हुआ होगा। प्रस्तुत लेख में पृथ्वी के पूर्व के वायुमंडल तथा पृथ्वी पर जैवरासायनिक क्रियाओं के विकास से संबंधित जानकारी समाहित की गयी है।

इस धरती पर जीवन की शुरूआत किस तरह से हुई ? इस विषय पर हजारों वर्षों से मनुष्य चिंतन करता रहा है। हमारी धार्मिक पुस्तकें भी इस ओर संकेत करती हैं। बाईबल के अनुसार एक दिन ईश्वर ने मिट्टी में दिव्य स्फुरण डालकर उसे चेतना में बदल दिया। गीता के अनुसार स्वयं भगवान ही 'जीवन' के आदि बीज हैं। कुरान के अनुसार पानी के बुलबुले से ही जीवन की शुरूआत हुई है। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण हजारों वर्षों तक बना रहा। परंतु पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण केवल 77 वर्षों पूर्व 1924 रूस के एक वैज्ञानिक डॉ. ए. आई. ओपेदिन एवं ब्रिटेन के एक वैज्ञानिक जे. बी. एस. हाल्डेने द्वारा प्रतिपादित किया गया। इन दोनों वैज्ञानिकों का यही दृष्टिकोण रहा कि पानी की सबसे छोटी बूंद ने एक पतली झिल्ली का कार्य किया होगा, उसमें फिर कई जैव रसायन एकत्रित हो गये होंगे, जिससे उनमें जीवन का रूपांतरण हुआ होगा। हम यहां केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

वैज्ञानिक मान्यतानुसार इस पृथ्वी पर जीवन की शुरूआत आज से 355 करोड़ वर्ष पूर्व हुई होगी। पृथ्वी का उदय सौर्यमंडल के साथ आज से लगभग 460 करोड़ वर्षों पूर्व हुआ। इसके बाद 105 से 110 करोड़ वर्षों के बीच जैव रसायनिक अभिक्रियाएं चलती रहीं। ये जैव-रसायनिक क्रियाएं कैसी थीं ? हमें यह विचार करना है।

पृथ्वी के पूर्व का वायुमंडल :

हम जिस वायुमंडल में आज जीवित हैं, वैसा वायुमंडल पूर्व में नहीं था। स्पेक्ट्रोमीटर से जांच करने पर यह ज्ञात हुआ है कि आकाशीय बादल कई प्रकार के तत्त्वों से बना हुआ है, जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन, पानी की कुछ बूंदें, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व सल्फर, सिलिकॉन व कार्बन-डाइऑक्साइड आदि हैं। यह वायुमंडल ऑक्सीकारक (ऑक्सीडाइजिंग) वायुमंडल कहलाता है। जबकि पहले वायुमंडल मीथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन, पानी की बूंदों आदि से मिलकर बना था। यह वायुमंडल अवकारक (रिड्यूसिंग) वायुमंडल कहलाता है। एक और परिकल्पना के अनुसार पूर्व वायुमंडल नाइट्रोजन, कार्बन मोनोऑक्साईड व हाइड्रोजन आदि के तत्त्वों से भरा हुआ था। डॉ. एस. एल. मिलर ने 1955 में एक प्रयोग किया, जिसमें एक फ्लास्क में वायुमंडलीय गैसें मीथेन (CH_4), अमोनिया (NH_3), हाइड्रोजन (H_2) को एकत्रित किया। दूसरे फ्लास्क में पानी को नीचे से उबाला गया। इसकी वाष्प ऊपर रखे फ्लास्क में प्रवाहित की गयी, जिस फ्लास्क में गैसें रखी हुई थीं। अब इस फ्लास्क में दो इलेक्ट्रोड लगाकर बिजली से स्पार्क किया गया। इससे बिलकुल

वैसा ही दृश्य बनता था जैसे बरसात में बादलों की गड़गड़ाहट में बिजली चमकती है। इस प्रयोग को कई दिनों तक चलाया गया। अंत में बने हुए अणुओं का विश्लेषण किया गया। इस विश्लेषण में बहुत से ऐसे एमिनो एसिड थे जो जीवन में पाये जाते हैं। बहुत से ऐसे भी थे जो जीवन में नहीं भी पाये जाते हैं। एमिनो एसिड ही जीवन के अग्रदूत थे, निर्माणखंड थे। एक ओर यह भी माना जाता रहा है कि अंतरिक्ष से आनेवाली उल्काएं (मेटोराइट्स) भी इस प्रकार के अणुओं को पृथ्वी पर लाती रही होंगी। 3.8 अरब वर्ष पूर्व इन उल्काओं का आगमन बहुत ही अधिक होता था। इनके माध्यम से भी 5-10 प्रतिशत कार्बन यौगिक पृथ्वी पर आते रहे हैं। इनमें से कुछ रायबोन्यूक्लिक एसिड (RNA) व डी-ऑक्सी-रायबो-न्यूक्लिक एसिड (DNA) भी थे। डॉ. हेराल्ड यूरे ने ऐसे वायुमंडल का चित्रण किया था जिसमें हाइड्रोजन एवं मीथेन की अधिकता थी। उनके अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि बृहस्पति एवं शनि के वायुमंडल में भी हाइड्रोजन की प्रचुरता थी। आधुनिक परिकल्पनाओं से यह पता चलता है कि मीथेन, अमोनिया, एवं हाइड्रोजन की मात्रा बहुत थी। डॉ. मिलर के प्रयोग से यह स्पष्ट प्रतिपादित हुआ कि उपरोक्त गैसों की अभिक्रियाओं से जीवन के प्रथम चरण का प्रारंभ हुआ होगा। अन्य ग्रहों पर इसी प्रकार की प्रतिक्रियाएं चल रही होंगी। डॉ. यूरे ने यह खोज की थी कि सरचिसन उल्का में भी वही एमिनो एसिड थे जो डॉ. मिलर के प्रयोग में प्राप्त हुए थे।

पृथ्वी पर जैव रसायनिक क्रियाओं का विकास :

जीवन से संबंधित जटिल कार्बनिक अणु पृथ्वी पर कैसे आये होंगे ? हमें ठीक-ठीक इसकी अभिक्रिया ज्ञात नहीं है। परंतु अनुमानों के आधार पर उल्काओं, अंतरग्रहों की धूल, धूमकेतुओं से लाये गये सरल कार्बनिक अणुओं के साथ पृथ्वी के वायुमंडल में हुए विद्युत डिस्चार्ज, पराबैंगनी किरणें एवं अन्य ऊर्जा के स्रोत जो तात्कालीन थे, इनकी अभिक्रियाओं से जटिल कार्बनिक अणु बने थे। डॉ. मिलर की खोज से एक नये पूर्व-जैवरसायनशास्त्र का उदय हुआ। इससे हम प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर सके कि जीवन की शुरूआत में किन-किन अभिक्रियाओं ने भाग लिया होगा। एमिनो एसिड के अलावा दूसरे आर्गनिक एसिड, अजैविक रसायन, शर्करा, प्यूरीन व पायरेडिन क्षारों (गुआमिन, सायटोसिन व एडिनीन) आदि सब लंबी जटिल अभिक्रियाओं के बाद समुद्र में एकत्रित हो चुके होंगे। क्योंकि इन सब जैव रसायनों के आने के पूर्व पृथ्वी पर समुद्र आकार ले चुके थे। उस समय घनघोर वर्षा, ज्वालामुखियों एवं भूकंपों की आवृति बहुत अधिक थी। यह समुद्र आदिम शोरबा (प्री-बायोटिक सूप) के नाम से जाना जाता है।

आदि प्रोटिन का निर्माण कैसे हुआ होगा ? डॉ. एस. डब्यू. फॉक्स ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि एसिडिक एवं बेसिक एमिनो एसिड के शुष्क सम्मिश्रण को 210 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करने से प्रोटीन के समान बहुलक (पॉलीमर्स) पाये गये हैं। ये प्रोटियोनॉयड कहलाते हैं। प्रोटियोनॉयड एवं प्रोटीन के कई गुणों में समानता है। डॉ. फॉक्स का विश्वास था कि इस प्रकार की अभिक्रियाएं ज्वालामुखियों के निकट हुई होंगी। क्योंकि प्रोटियोनॉयड में जल की मात्रा नहीं होती है। परंतु इन अणुओं में जीवाणु द्वारा संश्लेषित प्रोटीन से कई प्रकार की भिन्नताएं भी हैं।

डॉ. मिलर के प्रयोगों द्वारा हाइड्रोजन सायनाइड व एसीटलडीहाइड भी प्राप्त हुए थे। डॉ. जे. औरो ने प्रयोगों द्वारा यह दर्शाया कि हाइडोजन सायनाइड के घोल पर सूर्य से निसृत पराबैंगनी किरणों की बौछारें करने से एडिनीन व गुआनिन प्राप्त होते हैं जो कि प्यूरीन कहलाते हैं। हाइड्रोजन सायनाइड सायनोएसीटीलीन में भी बदल सकता है। प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हो चुका है कि हाइड्रोजन सायनाइड ने सायटोसिन एवं युरेसिल के संश्लेषण में भी मदद की होगी। इस प्रकार हाइड्रोजन सायनाइड आदिम जैव-रसायनिकी में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका संघनक अभिकारक के रूप में अदा करता था। यह वही एक यौगिक है जिससे मिथाईल आइसोसायनाइड (MIC)

भी बनाया जा सकता है जिसने भोपाल गैस त्रासदी में विध्वंसक भूमिका की थी ।

एडीनीन एसिटाईल कोएंजाइम व एडिनोसाईन ट्रायफॉस्फेट (एटीपी) में भी उपस्थित रहता है । ये दोनों यौगिक कोषा के लिए ऊर्जाघर का काम करते हैं । डॉ. जे. औरो के एक ओर प्रयोग ने यह निर्धारित किया कि फार्मल्डीहाइड (H.CHO) व एसीटलडीहाइड की उपस्थिति में 50^0 सेल्सियस तक गर्म करने पर डी. ऑक्सीरायबोस शर्करा प्राप्त होती है ।

एक प्रयोग में श्रीलंका के वैज्ञानिक डॉ. सी. पोन्नमपुमा ने यह भी प्रतिपादित किया कि एडीनीन, फॉस्फोरस व रायबोस शर्करा के जलीय मिश्रण पर सूर्य की पराबैंगनी बौछारें करने से एडीनोसाईन प्राप्त किये जा सकते हैं । जो DNA में लगने वाला मौलिक अणु है । एक और प्रयोग द्वारा न्यूक्लिओसाईड को फॉस्फोरिक एसिड के साथ लंबे समय तक 130^0 डिग्री सेल्सियस पर गर्म करने में न्यूक्लिओटाइड में बदल जाता है ।

डॉ. स्क्रम ने एक प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है कि पॉलीमेटाफॉस्फेट इथाइल इस्टर (पीएपीई) के साथ न्यूक्लिओटाइड 550^0 डिग्री सेल्सियस पर 18 घंटे तक अधिक मात्रा में अजलीय माध्यम में गर्म करने पर बहुलक (पॉलीमर) प्राप्त होते हैं । जैसे कि पॉली-यू, पॉली-सी, पॉली-ए, पॉली-टी, जो कि 15,000 से 50,000 अणुभार के होते हैं ।

डॉ. एल. ई. ओरगिल व उनके साथियों ने लोहिया विश्वविद्यालय से पॉली-ए (मोनोमर्स) एकलक को पॉली-न्यूक्लिआसिड टेम्पलेट के माध्यम में मिलाने पर और भी कई छोटे-छोटे पॉली-ए स्वयं उत्पन्न हो गये । इस माध्यम में कोई एंजाइम व उत्प्रेरक उपस्थित नहीं था । जब माध्यम में लेड आयन उपस्थित हो तब पॉली-ए की लंबाई बहुत अधिक हो जाती है । ये पॉली-ए ही RNA के अग्रदूत हैं ।

उपरोक्त सभी अणु आदिम पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों की रसायनिक अभिक्रियाओं द्वारा आदिम शोरबा में एकत्रित हो चुके थे ।

आर. एन. ए. जगत :

जीवन की शुरूआत कैसे हुई, यह जानने के लिए जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, उससे यह तय है कि आधुनिक कोशिका वाले महाअणु (मेगाअणु) किसी एक बिंदु के पूर्व अवश्य आये होंगे । वर्तमान कोशा (cell) में चार प्रकार के महाअणु मुख्य रूप से पाये जाते हैं न्यूक्लिकएसिड, प्रोटीन, शर्करा व वसा (फैटी एसिड) । जो जैवरसायनिक अणु पहले आये उनमें मुख्य रूप से न्यूक्लिकएसिड ही थे । शायद आर. एन. ए., डी. एन. ए. व प्रोटीन भी हो सकते हैं । तत्कालीन परिस्थितियों में तीन में से कोई एक अणु पहले आया होगा । यह भी है कि तीनों अणुओं के बिना कोई भी अणु अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकता है । पर वह पहला अणु कौन सा था ? यह जानने के पूर्व हम यह ज्ञात करेंगे कि ये तीनों अणु एक दूसरे से जुड़े कैसे रहते हैं ।

प्रोटीन कोशा का वह मौलिक अणु है जिससे कोशा की संरचना पूर्ण होती है । प्रोटीन ही अंदर के सभी अवयवों का कोई न कोई हिस्सा बनाते हैं । उत्प्रेरक प्रोटीन व एंजाइम प्रोटीन हजारों प्रकार की जैव रसायनिक क्रियाओं में भाग लेकर भी अछूते रहते हैं । ये उत्प्रेरक का कार्य करते हैं । फिर चाहे न्यूक्लिकएसिड का संश्लेषण हो, चाहे भोज्य पदार्थ का विभाजन हो या ऊर्जा की खपत ही क्यों न हो, सभी में प्रोटीन का होना आवश्यक है । ये जीन के द्विगुणित होने का कार्य कमांडर प्रोटीन ही करते हैं । ये प्रोटीन के अंदर एवं बाहरी वायुमंडल में भी क्रियाशील रहते हैं । यह तय है कि प्रोटीन स्वयं का प्रतिरूपण (रिप्लीकेशन) नहीं कर सकते हैं । एमिनोएसिड का प्रोटीन में रूपांतरण तभी हो सकता है जबकि इसकी सूचना डी. एन. ए. से आर. एन. ए., से प्रोटीन कारखाने (रायबोसोम) में प्रवाहित होती है । डी. एन. ए. आधुनिक कोशा में पैतृक गुणों को अगली पीढ़ी में प्रवाहित करने का कार्य करता है । डी. एन. ए. के न्यूक्लिओटाइड के क्रम विन्यास से प्रत्येक प्रोटीन में जुड़ने वाले 20 एमिनो एसिड की सूचना भरी होती है । डी. एन. ए. की

संरचना न्यूक्लिओटाइड के अधिक संख्या में जुड़ने से ही बनती है । प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड में निम्न 4 प्रकार के क्षारों में से कोई दो क्षार हाइड्रोजन बंध से जुड़े रहते हैं ।

ए = एडीनीन, जी = गुआनीन (प्यूरीन)

टी = थायमीन, सी = सायटोसीन (पायरेमीडीन)

यू = यूरेसिल (केवल आर. एन. ए. में)

इन्हीं में से एक क्षार प्यूरीन एवं एक क्षार पायरेमीडीन में से लेने पर न्यूक्लिओटाइड की रचना बनती है । जैसे एडीनीन-थायमीन, गुआनीन-सायटोसिन । न्यूक्लिओटाइड के जुड़ने का क्रम ही एमिनो एसिड के जुड़ने का क्रम किसी एक प्रोटीन के लिए निर्धारित करते हैं ।

डी.एन.ए. के किसी एक फीते में प्रोटीन बनाने की सूचना भरी होती है । डी.एन.ए. की रचना में दो फीतों को घुमाकर जोड़ने से (डबल स्पाइरल) एक सीढ़ीनुमा रचना बन जाती है ।

डी.एन.ए. में भरी सूचना को प्रोटीन कारखाने (रायबोसोम) तक पहुंचाने के पूर्व एक मध्यस्थ अणु की आवश्यकता होती है । आर. एन. ए. ही मध्यस्थता की भूमिका निभाते हैं । आर. एन. ए. केवल एक फीते का ही बना होता है । आर. एन. ए. में टी. क्षार की जगह यू. (यूरेसिल) क्षार पाया जाता है । आर. एन. ए. तीन प्रकार के होते हैं ।

1) एम - आर. एन. ए. (संदेशवाहक) रायबोन्यूक्लिक एसिड

2) टी - आर. एन. ए. (द्रव्यमान) (ट्रांसफर) रायबोन्यूक्लिक एसिड

3) आर. एन. ए. (रायबोन्यूक्लिक) राइबोन्यूक्लिक एसिड

एम - आर. एन. ए. :

एम - आर. एन. ए. का एक सिरा हमेशा DNA के किसी एक फीते से चिपका रहता है, यह अवस्था तब तक बनी रहती है, जब तक संदेश पूर्ण नहीं हो जाता है । यू- DNA से आदेशों को तीन रसायनिक अक्षरों (कोडन) के रूप में से लेकर आगे चलते हैं । ये तीन क्षारों में से ही कोई तीन होते हैं ।

टी - आर. एन. ए. :

ये स्वतंत्र रूप से प्रोटोप्लाज्म में विचरण करते हैं । कभी - कभी इनके सिरे पर एक एमिनो एसिड रहता है । इसके निचले सिरे पर तीन क्षार रूपी (एंटी-कोडन) रसायनिक अक्षरमाला होती है । ये ऊपर रखे हुए एमिनो एसिड की सूचना देते हैं । टी. - आर. एन. ए. एक एमिनो एसिड को लेकर रायबोसोम में पहुंचते हैं जहां पर प्रोटीन बनने की श्रृंखला का निर्माण सतत चालू रहता है । आर. एन. ए. से टी - आर. एन. ए. तभी जुड़ता है जबकि उसे वांछित एमिनो एसिड की आवश्यकता होती है । अन्यथा हटकर अलग हो जाता है ।

आर - आर. एन. ए. :

आर - आर. एन. ए. भी प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, परंतु ये रायबोसोम की दीवारों से जुड़े रहते हैं । डॉ. हेरी नोलर (कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय) ने पता लगाया कि आर- RNA प्रोटीन संश्लेषण में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं । कुछ आर-RNA डी.एन.ए. के द्विगुणित होने में मदद करते हैं । कुछ M-RNA को परिष्कृत करने में मदद करते हैं । आधुनिक कोशा में दोनों RNA एक - दूसरे से कार्य एवं निर्माण हेतु जुड़े रहते हैं ।

परिकल्पना यह है कि कई प्रकार के कार्य किसी एक मौलिक अणु ने संपादित किये होंगे । इस परिकल्पना में RNA ही अहम् भूमिका अदा करता है । यह अणु एक आदिम संरचना प्रदत्त करता है । उसके साथ ही यह सभी रसायनिक अभिक्रियाओं को निभाने में असमर्थ हैं । परंतु वैज्ञानिकों को एक बार पुनः दृष्टिकोण बदलना पड़ा । जब डॉ. आटॅमन व डॉ. थामस (येले एवं कोलोरोडो विश्वविद्यालय) ने 1970 में यह घोषणा की कि RNA स्वयं ही उत्प्रेरक का कार्य भी कर सकता है एवं स्वयं ही द्विगुणित होने की क्षमता रखता है । इन्हें किसी और उत्प्रेरकों की आवश्यकता नहीं होती है । बस तब से जीव -विज्ञान में तहलका मच गया । यह भी प्रस्तावित किया गया कि DNA के समान आदिम युग में RNA द्विगुणित होने की क्षमता रखता था । इसमें केंद्रीय सूचना RNA के समान भरी रहती थी । 1986 में डॉ. वाल्टर गिलबर्ट ने 'आर.एन.ए.जगत' नाम देकर इस परिकल्पना को स्वीकार किया ।

आर. एन. ए. जगत का विकास :

RNA जगत एक बहुत ही विकासशील अवस्था में

जीवन की शुरूआत हेतु प्रकट हुआ था। परंतु इसके पर्दे पर आने के पहले अजैविक रसायन अवश्य मौजूद रहे होंगे। वैज्ञानिकों ने इसे 'पूर्वचयापचयन' अवस्था कहा है। कुछ अज्ञात रासायनिक अभिक्रियाओं ने RNA को जन्म दिया होगा। परंतु जल में RNA जलीकरण की अभिक्रियाओं से कैसे मुक्त रहा होगा ? यह प्रश्न अनुत्तरित है। पूर्वचयापचयन अवस्था तब तक ही जीवित रही होगी, जब तक कि आधुनिक चयापचयन अवस्था ने अधिकार नहीं जमा लिया हो। प्रथम अवस्था में एक ऐसा रास्ता बनना ही था जिससे कार्बनिक पदार्थ RNA में बदल सके। जो पूर्व जीवन की ईंटें एमीनो एसिड थीं, इन्हीं में से किसी ने RNA जगत को उत्पन्न किया होगा। इन्हीं से न्यूक्लिओटाइड का बनना आरंभ हुआ होगा। ये न्यूक्लिओटाइड ही RNA के अग्रदूत थे। वैज्ञानिकों ने प्रयोगशालाओं में इन घटनाओं को पुनः प्रतिपादित किया, परंतु उन्हें बहुत कम सफलता हाथ लगी। दूसरी ओर यह परिकल्पना भी अभिव्यक्त की गयी कि RNA जगत को आदिम काल में अधिक काल तक लंबी चलने वाली अभिक्रियाओं ने ही जीवित रखा होगा।

RNA का द्विगुणित होना अवश्य ही RNA जगत के विकास की अवस्था का अगला कदम रहा होगा। एक प्रयोगशाला में डॉ. जी. एफ. जायस ने RNA की कुछ प्रजातियों को लेकर विकसित किया है और उनका कई गुना उत्पादन भी कर दिखाया। परंतु यह समस्या इतनी आसान नहीं थी। वैज्ञानिकों की अधिक दूरगामी दृष्टि से देखने की आदत रही है। अभी-अभी RNA जगत द्वारा RNA की उत्प्रेरक क्रियाशीलता को दिखाने में असफलता भी हाथ लगी है। RNA की द्विगुणित प्रक्रिया द्वारा डार्विन के विकासवाद की परिकल्पना को प्रतिपादित करना संभव हुआ है। क्योंकि RNA के द्विगुणित होने में कोई न कोई भूल होना, नयी-नयी प्रजाति का उत्पन्न होना, विकासशील अवस्था का सूचक रही है। RNA द्विगुणित होने का लक्षण चयनात्मक लाभ का ही अंग था। तीसरी अवस्था में RNA जगत की विकासशील अवस्था में प्रोटीन संश्लेषण (RNA पर आधारित) का उत्पन्न होना। एक बार प्रोटीन यांत्रिकी का वायुमंडल में प्रवेश के M-RNA, T-RNA का विकास होना संभव हुआ होगा। RNA जगत का अंत तभी हुआ जब अनुवाद करने की अभिक्रियाओं ने सही-सही रूप से आधिपत्य जमा लिया होगा। DNA संकेतों द्वारा प्रोटीन का बनना चरम विकास की अवस्था रही होगी। परंतु इसी बीच थायोईस्टर ग्रुप का प्रवेश हुआ होगा।

थायोईस्टर जगत :

कार्बनिक अणु जब सल्फर एवं हाइड्रोजन अणु से जुड़ता है तब 'थायोईस्टर जगत' बनता है। इस जगत में कारबोऑक्जेलिक एसिड उपरोक्त अणु में जुड़कर थायोईस्टर बनाते हैं। इसमें से पानी का विच्छेदन हो जाता है।

$$R.SH + R^1COOH \dashrightarrow R^1S\,COR^1 + H_2O$$

आदिम शोरबा में इस प्रकार के अणु पाये गये होंगे। एमिनो एसिड के साथ कार्बोऑक्जेलिक एसिड भी बहुतायत में डॉ. मिलर के फ्लास्क में पाये गये थे। दूसरी ओर ज्वालामुखी के मुहाने पर भी थायल ग्रुप के अणु पाये गये हैं।

जैव वैज्ञानिकों ने 'थायोईस्टर बंधन को एटीपी' ATP (एड्रीनोसाईन ट्रायफॉस्फेट) में पाये जाने वाले बंधनों के समान उच्च ऊर्जाधनी बंधन कहा है। वर्तमान कोशा में एडीनोमोनोफॉस्फेट ऊर्जा लेकर डायफॉस्फेट में, फिर एटीपी में परिवर्तित हो जाते हैं। फिर से एटीपी का टूटना ऊर्जा का उत्पादन कहलाता है।

थायोईस्टर एटीपी के उत्पादन में एक मध्यस्थ अणु की भूमिका अदा करते हैं। ये अभिक्रियाएं आदिम शोरबा में भी आवश्यक रही होंगी। 'थायोईस्टर जगत' 'एटीपी जगत' के बहुत नजदीक है। थायोईस्टर जगत ने एटीपी के बंधन बनाने में बहुत मदद की होगी। डॉ. फ्रिज लिपमन ने 1960 में यह दर्शाया की आधुनिक बैक्टीरिया 10 से अधिक एमिनो एसिड से बनने वाले पेप्टाईड में थायोईस्टर उपस्थित रहते हैं। इसके पूर्व जर्मन के वैज्ञानिक डॉ. थीयोडट वाईलैंड ने 1951 में दर्शाया कि जलीय माध्यम में जो पेप्टाईड एमिनो एसिड द्वारा उत्पन्न होते हैं

उनमें थायोईस्टर रहते हैं । इस प्रकार की अभिक्रियाएं थायोईस्टर जगत में अवश्य हुई होंगी । डॉ. क्रिश्चन डी. डेवी का यह अभिमत रहा है कि थायोईस्टर पूर्व जैविक चयापचयन में एंजाइम के समान कार्य करने वाले अणु थे ।

अतः वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि थायोईस्टर जगत जीवन की शुरुआत के पहले की दुनिया में आये होंगे, और इनके द्वारा उत्प्रेरक एवं ऊर्जाप्रचुर अभिक्रियाओं में सहयोग दिया होगा ।

डी. एन. ए. जगत :

यह अभी स्पष्ट रूप से मालूम नहीं है कि पहला दो फीते वाला जीन एक फीते से कब बना होगा । एक कल्पनानुसार रायबोन्यूक्लिसाईड डायफॉस्फेट नामक एंजाइम ने DNA जगत के अस्तित्व में आने में मदद की होगी । DNA जगत का सीधे हाथ के हेलिक्स के रूप में पदार्पण ? क्यों केवल एल. (लीवो) एमिनोएसिड ने ही जीवन के लिए कार्य किया ? DNA जगत से चयापचयन क्रियाओं का विकास होना ? जो वायरस केवल RNA पर अवलंबित हैं क्या वे रायबोन्यूक्लियो प्रोटीन जगत के अवशेष हैं ? ये सब प्रश्न अभी पूर्ण रूपेण उत्तरित नहीं हैं ।

को-एसरवेट परिकल्पना पूर्व चयापचयन :

डॉ. ए. आई. ओपेरिन ने प्रतिपादित किया था कि किसी जलीय घोल में बड़े अणुभार वाले पदार्थ मिलाने से को-एसरवेट का निर्माण होता है । गम अरेबिक (बबूल गोंद) एवं जिलेटिन द्वारा को-एसरवेट बनाये जा सकते हैं । प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि को-एसरवेट बाहरी वायुमंडल के एंजाइम अंदर ग्रहण कर लेती है ।

जीवन की शुरूआत :

उपरोक्त परिकल्पनाओं में से कितनी परिकल्पनाएं आने वाले काल में जीवित रहेंगी एवं अपना अस्तित्व बनाये रखेंगी, यह कहना अभी मुश्किल है । लेकिन केवल एक अंदाज लगाया जा सकता है कि पृथ्वी पर जीवन कैसे आया होगा ? सभी अभिक्रियाएं बहुत ही उपयुक्त एवं परिणामोत्पादक हैं । पृथ्वी पर पूर्वकाल में जो अभिक्रियाएं संपन्न हो सकती थीं, उन्हीं पर अनुमान लगाया गया है ।

DNA ने आगे और परिष्कृत जीवन प्रदान किया है । परंतु DNA ठीक-ठीक समय कब आया बताया नहीं जा सकता है ? रसायनिक म्यूटेशन (उत्प्रेरण) द्वारा RNA से DNA प्राप्त किये जा सकते हैं । यह सुनिश्चित है कि जो पदार्थ RNA के द्विगुणित होने में आवश्यक था, वही DNA के द्विगुणित होने में आवश्यक रहा होगा । इनमें एक संतुलन बना रहा होगा । अगर RNA जगत में ऐसा संपन्न हुआ है तब तो यह एक अंतिम अवस्था रही होगी ।

क्या इसी प्रकार की अभिक्रियाएं ब्रह्मांड में और कहीं भी चल रही थीं या चल रही हैं ? या जब कभी ब्रह्मांड में जीवन आयेगा पुनः इन्हीं क्रियाओं को दोहराया जायेगा ? यह सब इसलिए कहना आवश्यक है कि जिस सीमा रेखा के भीतर क्रियाएं चलती हैं, वे बहुत ही स्थिर (फिक्स) हैं । इन्हें पुनः उत्पन्न किया जा सकता है, अभी तो नहीं, परंतु, शायद भविष्य में ।

❑❑❑

आवश्यक है राष्ट्रीय पुष्प कमल का संरक्षण

नरेंद्र चंद्र तिवारी
510/184, न्यू हैदराबाद, केदारनाथ मार्ग,
लखनऊ - 226 007 (उ. प्र.)

जलीय पुष्पों में 'कमल' का अपना एक विशेष स्थान है। यह न केवल भारत वर्ष बल्कि संसार के कई देशों में पाया जाता है। पारिस्थितिकी के अनुसार इनमें काफी विविधता भी देखने को मिलती है। यह हमारा राष्ट्रीय पुष्प है और सांस्कृतिक मान्यता लिए हुए भी है। प्रस्तुत लेख में इस पुष्प के कई पहलुओं पर संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

कमल भारत वर्ष का एक अत्यंत लोकप्रिय शोभाकारी जलीय पौधा है। इसे भारत का राष्ट्रीय पुष्प होने का गौरव भी प्राप्त है। यह दक्षिण पूर्व एशिया के शीतोष्ण, समशीतोष्ण, उपोष्ण तथा उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में विस्तृत रूप से पाया जाता है। कमल भारत सहित श्रीलंका, म्यांमार, इंडोनेशिया, कोरिया, थाइलैंड, वियतनाम, कंबोडिया, जापान तथा चीन में विस्तृत रूप से पाया जाता है। भारत में यह कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अनेक दृश्य रूप विविधता के साथ दिखाई देता है। कमल विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों में विस्तृत रूप से फैला हुआ है तथा इनके फूलों के आकार, आकृति तथा रंगों की आभा में काफी विविधता होती है। कमल के पौधों में आंतर प्रजाति विविधता (इन्ट्रा स्पीसीज़ डाइवर्सिटी) का गुण निहित है जिसके कारण इनके पौधों में काफी विविधता देखी जाती है। प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली इस विविधता के कारण कमल की अनेक स्थानीय जातियों की पहचान की जा सकती है। अत: कमल की अनेक जातीय प्रारूपों में अलग-अलग आकार, आकृति तथा रंगों की आभा स्पष्ट रूप से दिखलायी देती है।

कमल एकल जातीय कुल 'निलंबोनेसी' के अंतर्गत आता है। विश्व में कमल की मात्र दो प्रजातियां ही पायी जाती हैं। निलंबो नूसीफेरा (भारतीय कमल) उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय एशिया से लेकर आस्ट्रेलिया तक की देशज् प्रजाति है तथा हवाई द्वीपों में भी प्राकृतिक रूप से पायी जाने लगी है। यह भारतीय प्रजाति है जिसमें श्वेत तथा गुलाबी रंग के फूल आते हैं। इसे 'एशियाई कमल' तथा 'पवित्र कमल' भी कहा जाता है। भारत में कमल को अनेक नामों से जाना जाता है (तालिका-1)। पुरावानस्पतिक अध्ययनों तथा प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि कमल भारत का देशज् पौधा है। कमल की दूसरी प्रजाति निलंबो ल्यूटिया (अमरीकी कमल) है जो उत्तरी अमरीका के कुछ उष्ण भागों में पायी जाती है जिसमें पीले रंग के फूल आते हैं। इसे 'येलोलोट्स' या 'अमेरीकन लोट्स' कहा जाता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि 'अमरीकी कमल' एक अलग प्रजाति न होकर भारतीय कमल का ही एक प्रारूप है।

भारतीय संस्कृति का प्रतीक है कमल :

कमल अनादि काल से भारतीय वैदिक संस्कृति का प्रतीक है। यह सुंदर पुष्प पवित्रता, मंगलता, संपूर्णता, शाश्वतता तथा सौंदर्य का प्रतीक माना जाता रहा है। इस पुष्प का प्रभाव बौद्ध एवं जैन धर्म पर भी व्यापक रूप से पड़ा है। जहां-जहां भी भारतीय संस्कृति पहुंची है, वहां-वहां कमल अपने व्यापक रूप में विद्यमान है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में कमल से संबंधित अनेक कथाएं हैं। धर्म, अध्यात्म, योग, लौकिक-अलौकिक साहित्य, वास्तु, शिल्प, मूर्तिकला, चित्रण-मुद्रण आदि सभी कमल पुष्प के सौंदर्य से प्रभावित हैं।

श्री एवं समृद्धि की देवी लक्ष्मी रक्त कमल पर आसीन हैं। ज्ञान की देवी सरस्वती श्वेत कमलों पर आसन ग्रहण करती हैं। सृष्टि रचयिता ब्रह्मा भी रक्त कमल पर ही विराजमान हैं। अनेक देवियां अपने हाथों

तालिका : 1 कमल के अनेक नाम

भाषा	नाम
संस्कृत	कमल (जल को शोभित करनेवाला); पद्म (मनोहर), नलिन (सुगंधित); अरविंद (अराकार चक्राकार पत्तियोंवाला); महोत्पल (जल में पलने वाला); सहस्त्र पत्र (अनेक दल युक्त), शतपत्र (सौ दलों वाला); कुशेशय (जलज); पंकेरूह (पंक में उत्पन्न); तामरस (मनोहर और सरस), सारस (तालाबों में होने वाला); बिसप्रसून (मृणाल में लगने वाला पुष्प); राजीव (केशर समूह से युक्त), पुष्कर (पौष्टिक); अम्मोरूह (जलज) ।
हिंदी	कमल, पुरइन
बंगाली	पद्म
मराठी	कमल
गुजराती	कमल
कन्नड	कमल
तामिल	तामरै
तेलुगू	एर्रा तामर
मलयालम	तामर
कश्मीरी	पंपोश
अरबी	कातिलुन हल
अंग्रेजी	सेक्रेट लोटस, इंडियन लोटस, एशियन लोटस
लैटिन	नेलंबो-न्यूसीफेरा (Nelubo Nucifeba Gaertn)

में कमल पुष्प धारण किये हुए हैं । मंदिरों तथा संग्रहालयों में संग्रहित प्राचीन मूर्तियों, विभिन्न शैलियों के प्राचीन चित्रों तथा शिल्पों में कमल पुष्प की उपस्थिति देखी जा सकती है । देवताओं तथा देवियों के सौंदर्य की तुलना सदैव कमल पुष्पों से ही की जाती है । कमल पुष्पों से देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करना, कमल पुष्पों की माला अर्पित करना, कमल के बीजों से हवन करना तथा साधना और मंत्रों के जाप के लिए कमल गट्टे की माला का उपयोग उत्तम बताया गया है । विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले यंत्रों पर कमल की अनुकृति देखी जा सकती है । अनेक पर्वों-उत्सवों पर बनाई जाने वाली अल्पनाओं में भी कमल की अनुकृति देखी जा सकती है । पूजा-अर्चना, साधना तथा मंत्र जाप के लिए पढ़े जाने वाले वैदिक तथा तांत्रिक मंत्रों में भी कमल शब्द या इसके पर्यायवाची शब्दों का अनेक रूपों में प्रयोग हुआ है । इस प्रकार कमल हमारी भारतीय संस्कृति का आदि काल से प्रतीक है ।

बहु उपयोगी है कमल :

कमल एक सुंदर पुष्पों वाला जलीय पौधा ही नहीं है बल्कि धार्मिक-आर्थिक महत्व का पौधा भी है । ऐतिहासिक तथा पौराणिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत में प्राचीन काल से ही 'कमल सरोवर' बनाने की परंपरा रही है । राज प्रसादों, वाटिकाओं तथा नगर सुशोभन के लिए कमल सरोवर बनाये जाते थे । पूजा-अर्चना के लिए कमल के पुष्पों को विशेष महत्त्व दिया जाता था । सौंदर्य प्रसाधन के रूप में कमल पुष्प की पंखुड़ियों तथा परागकेशर का उपयोग किया जाता था ।

कमल के पौधे में अनेक पोषक गुण पाये जाते हैं । इसके प्रकंद तथा ताजे बीज खाने योग्य होते हैं तथा इसके अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार करके खाये जाते हैं । कमल के प्रकंदों (भूमिगत तना) को 'कमल ककड़ी' तथा 'भसींड़' नाम से जाना जाता है तथा सब्ज़ी के रूप में व्यापार होता है (तालिका-2 तथा -3) । कमल के फूलों से प्राप्त होने वाला शहद तथा इत्र अति उत्तम औषधीय गुणों से युक्त होता है । गंध चिकित्सा में इसके इत्र का विशेष महत्त्व है ।

कमल का संपूर्ण पौधा औषधीय गुणों से संपन्न होता है (तालिका-4) । विभिन्न रोगों के उपचार में इस पौधे को व्यवहार में लाया जाता है । आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधि के रूप में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है । इसके कुछ औषधीय उपयोग हैं :-

दोष प्रयोग - यह कफ पित्त जन्य विकारों के उपचार में प्रयुक्त होता है ।

संस्थानिक प्रयोग (बाह्य) - दाह (जलन) तथा वर्ण विकारों में इसका लेप लाभकारी होता है।

आभ्यंतर (नाड़ी संस्थान) - मस्तिष्क दौर्बल्य, मूर्च्छा, मानसिक उद्वेग तथा तज्जन्य निद्रा में इसका उपयोग करते हैं।

पाचन संस्थान - वमन, तृष्णा, अतिसार और प्रवाहिका आदि में यह उपयोगी है।

रक्तपरिवहन संस्थान - हृदय रोग में तथा अन्य तीव्र व्याधियों में हृदय पर आघात न हो, इसके लिए इसका उपयोग करते हैं। रक्त-स्तंभन के लिए रक्तातिसार, प्रदर, रक्तार्श एवं रक्तपित्त में यह अतीव प्रशस्त है। रक्तविकारों (वीपर्स, विस्फोट आदि) में भी उपयोगी है।

मूत्र संस्थान - मूत्रकृच्छ और पैत्तिक प्रमेह में उपयोगी है।

प्रजनन संस्थान - गर्भावस्था में इसका सेवन, गर्भाशय के स्राव को बंद करता है। गर्भाशय को बल प्रदान करता है तथा साथ ही गर्भ का भी पोषण करता है। इस प्रकार यह गर्भवती महिलाओं के लिए बड़ा उपयोगी है।

तालिका : 2

कमल के ताजे प्रकंदों में विद्यमान पोषक मान

पोषक पदार्थ	प्रतिशत/100 ग्राम
जल	83.80
अपरिष्कृत प्रोटीन	2.70
वसा	0.11
अपचायक शर्कराएं	1.56
सूक्रोज	0.41
स्टार्च	9.41
रेशा	1.10
कैल्शियम	0.061
थायमिन	0.22 मिग्रा. /100 ग्राम
राइबोफ्लेविन	0.06 "
नायसिन	2.1 "
एस्कार्बिक अम्ल	15.0 "

गर्भावस्था में इसका पराग केशर मक्खन के साथ या कमल गट्टे की पेया का प्रयोग करना चाहिए।

त्वचा रोग - यह वर्ण विकारों तथा अनेक चर्मरोगों में प्रयुक्त होता है।

तापक्रम - तीव्र ज्वर तथा दाह में इसका प्रयोग करते हैं। इससे ज्वर शांत होता है। दाह आदि उपद्रव दूर होते हैं। विषों का निर्हरण होता है तथा हृदय को शांति मिलती है। ज्वर में दाह, तृष्णा होने पर बीजों से श्रृत जल पिलाते हैं।

सात्मीकरण - दौर्बल्य में विशेषतः दुर्बल तथा क्षयग्रस्त बच्चों में इसका उपयोग होता है। सामान्यतः ऐसे बच्चों का मल भी पतला होता है और बल की वृद्धि होती है। विषों में भी यह प्रयुक्त होता है।

कमल की बड़े आकार वाली गोलाकार पत्तियों को ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक अवसरों पर पत्तल या थाली के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

संकट में है राष्ट्रीय पुष्प

कमल स्वच्छ जल वाले सरोवरों, जलाशयों, पोखरों तथा शांत झीलों में उगने वाला जलीय पौधा है। लेकिन, विगत कुछ दशकों से कमल का प्राकृतिक वासस्थान

तालिका : 3

कमल के अंडप में विद्यमान पोषक मान

पोषक पदार्थ	प्रतिशत/100 ग्राम
जल	10.0
प्रोटीन	17.2
वसा	2.4
कुल कार्बोहाइड्रेट	66.6
उपचारक शर्कराएं	2.4
रेशा	2.6
राख	3.8
कैल्शियम	136 मिग्रा./100 ग्राम
फॉस्फोरस	194 "
लोहा	2.3 "
एस्कार्बिक अम्ल	सूक्ष्म मात्रा

विभिन्न मानव जन्य क्रिया कलापों के कारण निरंतर दुष्प्रभावित हो रहा है । जलीय पारिस्थितिकी में विपरीत परिवर्तन हो रहे हैं । निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण पोखरों तथा जलाशयों को समतल बना कर मानव बस्तियां बसायी जा रही हैं जिसके कारण जलस्रोतों की संख्या कम होती जा रही है । भौतिक विकास के लिए भी जलस्रोतों पर अतिक्रमण हो रहा है । मनुष्य द्वारा निरंतर उपेक्षा के कारण अधिकांश जलाशय जलीय खरपतवारों से भरे पड़े हैं जहां कमल जैसे उपयोगी पौधों का पनपना कठिन है अथवा जलाशयों-पोखरों में जल ही शेष नहीं रह गया है । बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं से भी सरोवरों-पोखरों का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाता है । घरों से निकलने वाला कूड़ा-कर्कट, घरेलू अपमार्जक तथा अनुपचारित मल आदि किसी न किसी माध्यम से जल स्रोतों तक पहुंच कर उसकी प्रकृति को विकृति कर देते हैं । कल कारखानों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट तथा विषाक्त बहि:स्रावी आदि भी जलाशयों तथा पोखरों के जल को प्रदूषित कर रहे हैं । कृषि अपशिष्ट पदार्थों तथा फसल सुरक्षा के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले कीटनाशक रसायनों के उपयोग के कारण भी कमल का प्राकृतिक वासस्थान क्षतिग्रस्त हो रहा है । औद्योगिक अपशिष्ट, विषाक्त बहि:स्रावी, घरेलू कूड़ा-कर्कट, अपमार्जक पदार्थ तथा कृषि जन्य अपशिष्ट पदार्थों के निरंतर जमा होने के कारण जलीय पादप प्रजातियों के जनन द्रव्य में जैव रासायनिक परिवर्तन होना स्वाभाविक है । उक्त विपरीत पारिस्थितियों के कारण जलीय पारिस्थितिकी पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है । इससे जलाशयों में 'सुपोषण' की प्रक्रिया भी उत्पन्न हो जाती है । इसके परिणाम स्वरूप जलीय पादप प्रजातियों के जननद्रव्य में मूलजाभाषी जैव रासायनिक परिवर्तन भी होने लगते हैं । विपरीत जलीय पारिस्थितिकी की दशा में जलाशयों में पाये जाने वाले जलीय पौधों की मृत्यु के पश्चात जल में अपघटन होता है जिससे जल में ऑक्सीजन की कमी तथा कार्बनिक पदार्थों की अधिकता हो जाती है । यह घटना सुपोषण (इयूट्रोफीकेशन) कहलाती है । सुपोषण की स्थिति में जलीय जंतु ऑक्सीजन की कमी के कारण मरने लगते हैं तथा जल संदूषण की एक श्रृंखला बन जाती है ।

इस प्रकार विभिन्न विषम परिस्थितियों के कारण भारत के राष्ट्रीय पुष्प कमल का प्राकृतिक वासस्थान संकट ग्रस्त होता जा रहा है । परिणाम स्वरूप कमल का वितरण भी प्रभावित हो रहा है । एक दो दशक पूर्व जिन जलाशयों में कमल के फूल सहज ही सबका मनमोह लेते थे उन जलाशयों में अब कमल के फूल दिखायी नहीं देते हैं ।

संरक्षण तथा संवर्धन :

संपूर्ण भारत में कमल के पौधों को स्वच्छ जल वाले जलाशयों तथा झीलों में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है । जलीय खर पतवारों तथा जलप्रदूषण से आक्रांत जलाशयों की भली-भाँति सफाई करके कमल के पौधे लगाये जा सकते हैं । कमल के संरक्षण तथा शोभाकारी फूलों के लिए कमल को कृत्रिम रूप से तैयार किये गये जलाशयों में भी उगाया जा सकता है । नगर सौंदर्यीकरण की दृष्टि से कमल के पौधों को कृत्रिम रूप से तैयार किये गये कलात्मक जलाशयों में लगाया जा सकता है । इस प्रकार सरकारी या सार्वजनिक उद्यानों के साथ-साथ पिकनिक स्थलों तथा पर्यटन स्थलों में कृत्रिम जलाशयों में कमल के पौधे लगाये जा सकते हैं । बड़े आकार वाले बंगलों में भी कमल सरोवर बनाकर कमल के पौधे उगाये जा सकते हैं । इससे स्थान विशेष की शोभा भी बढ़ेगी ।

कमल के पौधों को उगाने के लिए लगभग 1.5 मीटर गहरे कृत्रिम जलाशय की आवश्यकता होती है । जलाशय की रूपरेखा, आकार तथा आकृति औपचारिक तथा अनौपचारिक, दोनों प्रकार की हो सकती है जो उपलब्ध भूमि तथा कमल उत्पादक की रुचि पर निर्भर करता है ।

कृत्रिम रूप से तैयार किये गये जलाशयों में सर्वप्रथम चिकनी मिट्टी तथा सड़ी हुई गोबर की खाद को 3:1 के अनुपात में लेकर तलहटी से 50 सेमी. की ऊंचाई तक एक सार रूप में भर देना चाहिए । साथ ही 100 ग्राम नीम की खली तथा 100 ग्राम डाई अमोनियम फॉस्फेट को प्रतिवर्ग मीटर की दर से चिकनी मिट्टी में मिलाना चाहिए । इन कार्यों के पश्चात जलाशय को एक मीटर

की ऊंचाई तक जल से भर देना चाहिए । इसके दो सप्ताह बाद जलाशय में कमल के पौधों का रोपण किया जा सकता है ।

कमल के पौधों का प्रसारण इनके प्रकंदों (भूमिगत तना) की कलम लगाकर तथा बीज बोकर किया जाता है । ऐसे प्रकंदों को जिसमें छोटे-छोटे नये अंकुर (किल्ले) निकल आयें हों, टुकड़ों में काट कर लगाया जाता है । प्रत्येक टुकड़ों में कम से कम तीन गाठें (पर्व संधियां) अवश्य होनी चाहिए । इन टुकड़ों को फरवरी-मार्च में जलाशय की क्यारियों में अनुप्रस्थ दशा में इस प्रकार लगाना चाहिए कि प्रकंदों के अंकुर ऊपर की दिशा में रहें ।

बीजों की बुआई भी फरवरी-मार्च में की जाती है । एक हेक्टर क्षेत्रों वाले जलाशय के लिए लगभग10 किग्रा. बीज की आवश्यकता होती है । यह बीज गहरे भूरे या काले रंग के होते हैं । प्रत्येक बीज का भार औसतन एक ग्राम होता है । कमल के बीज बहुत कठोर होते हैं । अत: बोने से पूर्व इनके दोनों सिरों को रेगमाल पर थोड़ा घिस लेना चाहिए । इसके पश्चात इन्हें जल में भिगो कर किसी पात्र में रख देना चाहिए । बीज कमरे के तापमान पर 3-5 दिनों के भीतर अंकुरित हो जाते हैं । इसके 8-10 दिनों के बाद, जब पौध में 2 पत्तियाँ निकल आयें अथवा जब पौध 4-5 सेमी. ऊंची हो जाये तो जलाशय में स्थानांतरित कर देना चाहिए । पौध रोपण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कमल की पत्तियां जल की सतह पर ही रहें व डूबने न पायें अन्यथा पौध मर सकती है । अत: जलाशय में पौध रोपण के पश्चात इतना जल ही भरना चाहिए कि कमल की पत्तियां जल की सतह पर तैरने लगें । जैसे-जैसे पौधे बड़े होते जाते हैं; जलाशय में जल की मात्रा बढ़ाते रहते हैं ।

कमल के एक पौधे को जलाशय में फैलने के लिए न्यूनतम 2 मी. x 2 मी. स्थान की आवश्यकता होती है । अत: जलाशय में प्रकंदों की कलम या पौध परस्पर दो मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए ।

कमल के बीजों में विलक्षण अंकुरण क्षमता होती है । इनके बीज 500 वर्षों की सुसुप्तावस्था के बाद भी अंकुरित हो सकते हैं । इनके बीज को कमरे के तापमान पर भी अनेक वर्षों तक सुरक्षित रूप से भंडारित किया जा सकता है ।

कमल के पौधों में एक अनोखी क्रिया होती है । इनके पौधे पुष्पन काल में एक सुनिश्चित मात्रा में ताप का उत्सर्जन करते हैं और तापक्रम का नियमन करते हुए एक विशेष सूक्ष्म जलवायु का निर्माण करते हैं । कमल में सबसे अच्छी और भरपूर पुष्पन क्रिया 30-35 से.ग्रे. तापमान पर होती है और फूल 2-4 दिनों तक खिलते रहते हैं । कमल की ताप नियामक प्रकिया पुष्पों के विकास तथा कीट परागण को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ इसको स्थायित्व भी प्रदान करती है । इससे कमल के पौधों के लिए उचित वातावरण का भी निर्माण होता है । कमल में अप्रैल माह से फूल खिलने आरंभ हो जाते हैं और सितंबर-अक्तूबर तक आते रहते हैं । अक्तूबर में इनके प्रकंद खोदने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

कमल की 35 देशज् जातियों के जनन द्रव्य (पौधे तथा बीज) को राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ के वनस्पति उद्यान में संग्रहित किया गया है । यह जनन द्रव्य विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों से एकत्र किये गये हैं जिसमें भारत के 11 प्रदेश सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त वनस्पति उद्यान में 25 विदेशागत जातियों के जननद्रव्य को जापान, थाइलैंड, इंग्लैंड, जर्मनी, अमरीका तथा ब्राजील के विभिन्न वनस्पति उद्यानों से प्राप्त कर लगाया गया है । उपरोक्त जातियों को वनस्पति उद्यानों से प्राप्त कर लगाया गया है । उपरोक्त जातियों को वनस्पति उद्यान में सफलता पूर्वक उपस्थापित किया गया है तथा उपस्थापित पौधों से नये पौधे तैयार कर इनकी संख्या लगातार बढ़ाई जा रही है । कमल की अधिकांश जातियों के फूलों में पंखुड़ियों की संख्या 16 से 36 तक होती है लेकिन मिदनापुर (पश्चिम बंगाल) से संग्रहित की गयी एक जाति में अधिकतम 160 पुष्प पंखुड़ियां पायी गयी हैं । इस जाति का नाम निलंबो नूसीफेरा 'कृष्णा' (कृष्ण कमल) रखा गया है । इसके फूल बड़े आकार के दोहरे तथा अत्यधिक शोभाकारी होते हैं । गुलदस्ते में इसके फूल अधिक समय तक टिकते हैं ।

तालिका : 4 कमल के औषधी द्रव्य गुण

गुण	विवरण / प्रकृति
गुण	लघु, स्निग्ध (चिकना), पिच्छिल (रेशेदार तथा भारी)
विपाक	मधुर
रस	कसाय, मधुर, तिक्त
वीर्य	शीत प्रकृति
कर्म	
दोष	कफ पित्तशामक है ।
संस्थानिक कर्म (बाह्य)	दाह प्रशमन और वर्ण्य
आभ्यंतर (नाड़ी संस्थान)	मेध्य और शामक
पाचन संस्थान	हृर्दिनिग्रहण, तृष्णानिग्रहण व स्तंभक प्रजास्थापन
रक्तपरिवहन संस्थान	मूत्र विरेचनीय और मूत्रविरजनीय
मूत्र संस्थान	वर्ण्य और त्वंदोषहर
त्वचा	ज्वरघ्न और दाहप्रशमन
तापक्रम	यह बल्य और विषघ्न
सात्मीकरण	अरविंदासव
विशिष्ट योग	पंचांग विशेषतः, पुष्प, बीज एवं मूल
प्रयोज्य अंग	बीज चूर्ण = 3 - 7 ग्राम
मात्रा	मूल स्वरस = 10 - 20 मिलि.

अमरीका में पाये जाने वाले पीले कमल निलंबो ल्यूटिया को भी राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में सफलतापूर्वक उपस्थापित किया गया है । यह प्रजाति यहां की जलवायु में भी भली भांति स्थापित हो गयी है । इस प्रजाति के बीजों को 1993 में मिसौरी बॉटेनिक गार्डन, सेंट लुईस, अमरीका से प्राप्त किया गया था । इस प्रजाति में भारतीय कमल की अपेक्षा कम संख्या में पुष्प आते हैं ।

कमल की व्यापारिक कृषि उद्योग के लिए लाभकारी बनायी जा सकती है । धार्मिक कार्यों तथा गृहसज्जा के लिए भी कमल के फूलों की मांग सदैव बनी रहती है । प्रत्येक प्रसिद्ध मंदिर में कमल पुष्पों को अर्पित करने का विशेष महत्व है । भारतीय संस्कृति में धन एवं ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की पूजा साधना में कमल के फूलों तथा कमल गट्टे से बनी माला का विशेष महत्व है । जहां कमल गट्टे की माला ऊंचे मूल्य पर बिकती है, वहीं प्रसिद्ध मंदिरों में कमल पुष्पों तथा कमल पुष्पों की मालाओं की मांग भी अधिक रहती है । कमल के प्रकंदों (भसींड़) को भी सब्जी के रूप में बेचा जाता है । अतः कमल के पौधों की खेती द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास भी किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी खेती से युवाओं में स्वरोजगार की संभावनाएं काफी बढ़ सकती हैं ।

❐❐❐

ओजोन परत का निर्माण व क्रियाकलाप

शिवेंद्र कुमार पांडे
(भूतपूर्व मुख्य महाप्रबंधक कोल इंडिया लिमिटेड),
छवि निकुंज, बांस बंगलो कंपाउंड, चौथी क्रॉसिंग,
रांची रोड, पुरुलिया (प. बंगाल) - 723 101

संसार में जीवनदायनी की भूमिका निभाने वाली ओजोन परत का विनाश मुख्यत: मानव जनित कारणों से हो रहा है। 1960 के दशक में पर्यावरण सुरक्षा / संतुलन बनाने की उत्पन्न जागृति के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श किये गये। कई कदम उठाये गये हैं जिनके परिणाम अब दिखने लगे हैं। प्रस्तुत लेख में ओजोन परत की संक्षिप्त संरचना का उल्लेख करते हुए संबंधित पहलुओं पर चर्चा की गयी है।

पृथ्वी में सभी जीवन-स्वरुपों के जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन (O_2) एक अनिवार्यता है। ऑक्सीजन तीन रुपों में पायी जाती है - ऑक्सीजन परमाणु (O), ऑक्सीजन अणु (O_2) और ओजोन (O_3)। ऑक्सीजन अणु में ऑक्सीजन के दो परमाणु बद्ध (बाउंड) होते हैं और यही ऑक्सीजन पृथ्वी के निचले वायुमंडल में विद्यमान रहती है। ओजोन में ऑक्सीजन के तीन परमाणु बद्ध होते हैं। ऑक्सीजन के समान ओजोन भी एक रंग-विहीन गैस है, पर उसमें तीखी गंध होती है।

लेकिन आरंभ में, जब पृथ्वी का उद्‌भव हुआ था, उस समय ऑक्सीजन गैस थी ही नहीं। ज्वालामुखियों के लगातार फूटते रहने से संपूर्ण वायुमंडल कार्बन डाइऑक्साइड व मीथेन से भरपूर था। कुछ काल पश्चात समुद्रों के भीतर जीवन-स्वरुपों का उद्‌भव होने लगा, जो कार्बन डाइऑक्साइड हजम कर ऑक्सीजन का प्रजनन करने लगे। इस ऑक्सीजन ने पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपरी भाग की ओर अग्रसर होना आरंभ कर दिया, जहां पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में इस ऑक्सीजन का विभाजन उसके परमाणुओं में होने लगा और फिर इन परमाणुओं ने संयुक्त हो कर, ओजोन का रुप धारण कर 'समतापमंडल' (स्ट्रैटोस्फियर) में सांद्रित हो 'ओजोन-परत' का निर्माण किया (चित्र-1) कुछ काल पश्चात पृथ्वी के वायुमंडल में ऑक्सीजन मात्रा बढ़ने पर ऑक्सीश्वसन जीवनस्वरुप जन्म लेने लगे (जो वर्तमान में सर्वत्र छाये हुए हैं), जिन्हें खतरनाक पराबैंगनी किरणों से बचाने में ओजोन परत एक छलनी समान, सुरक्षा कवच की भूमिका निभाती है।

ओजोन परत पृथ्वी के ऊपर 15 से 50 किलोमीटर ऊंचाई पर स्थित है और इसकी मोटाई लगभग 35 किमी. है। ओजोन का निर्माण सौर विकिरण द्वारा निरंतर होता रहता है, जिसका स्तर 300 मिलियन टन प्रति दिन है और इतनी ही मात्रा में यह प्राकृतिक रुप में नष्ट भी होती रहती है। इस परत के अंदर ओजोन की मात्रा किसी एक समय में इन दोनों प्रक्रियाओं का शेष भाग होती है और यह 2000 मिलियन टन के लगभग होती है। ओजोन परत के ऊपर ऑक्सीजन परमाणु रुप में रहती है क्योंकि पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में उसका विभाजन लगातार होता रहता है। लेकिन ओजोन परत के नीचे ऑक्सीजन आण्विक रुप में रहती है।

पृथ्वी के क्षोभमंडल में प्रवेश के पूर्व, सौर विकिरण गें उपस्थित 0.30 माइक्रॉन से कम और 0.70 माइक्रॉन से उच्च तरंग-दैर्घ्यों के एक बड़े भाग का विघटन व अवशोषण समतापमंडल में व्याप्त ओजोन परत द्वारा होता जाता है। इस क्रियाशीलता के फलस्वरुप पृथ्वी में दिखाई पड़ने वाला सूर्य प्रकाश एक तरंग-समूह है जिसमें संपूर्ण दृश्य स्पेक्ट्रम के अलावा अदृश्य भाग की कुछ किरणों का समावेश होता है, उदाहरण के लिए नजदीकी

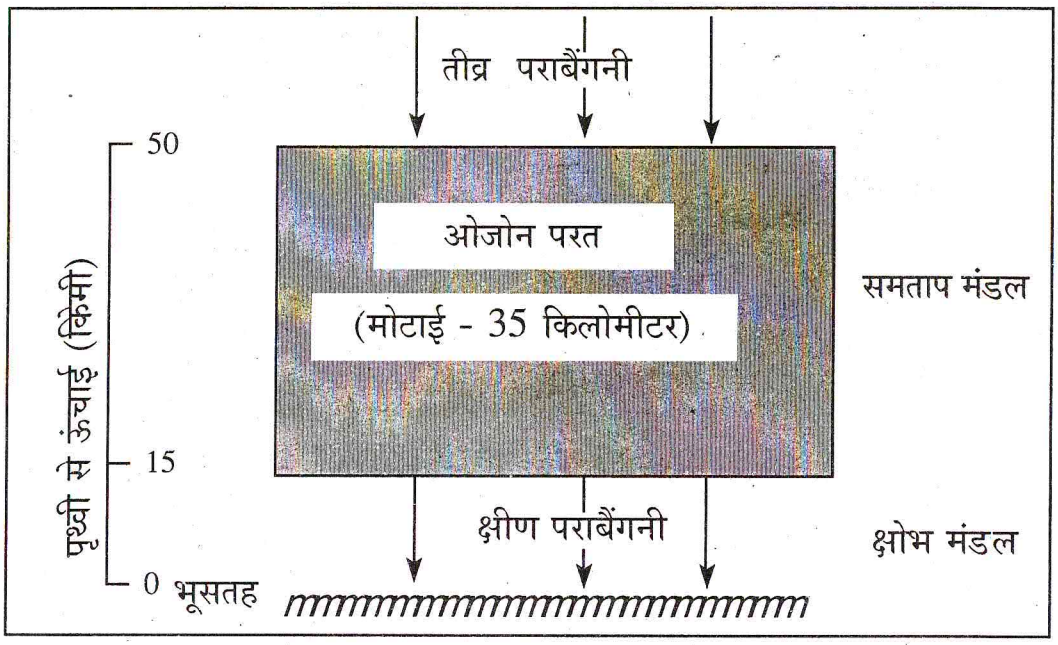

चित्र-1

पराबैंगनी (0.30 से 0.40 माइक्रॉन) और नजदीकी अवरक्त (0.70 से 2.50 माइक्रॉन)। यह उन खिड़कियों में से एक है, जो अंतरिक्ष की ओर खुलती हैं। दूसरी खिड़की को सूक्ष्मतरंग खिड़की कहा जाता है जिसमें वे सभी सौर किरणें सम्मिलित होती हैं जिनका तरंग-दैर्ध्य परास 1 मिमी. से 30 सेंमी. तक होता है। अर्थात सौर ऊर्जा विकिरण से ऊर्जा प्राप्ति का हमारा मुख्य स्रोत, विद्युत चुंबकीय वर्णक्रम का यही भाग है जो इन दोनों खिड़कियों के माध्यम से छन कर क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फ़ियर) में प्रवेश करता है।

ओजोन परत एक सूर्य पर्दे (सन स्क्रीन) के समान कार्य करती है और जैविक (बायोलॉजिकल) दृष्टि से खतरनाक पराबैंगनी-बी (0.28 से 0.32 माइक्रॉन) सौर-तरंगों के एक बड़े भाग का क्षोभमंडल में प्रवेश रोकने में समर्थ है। पराबैंगनी-बी का वह क्षीण-प्रवाह जो भूसतह के वायुमंडल तक पहुंचता है, उसके कारण धूप-ताम्रता (सन बर्न), त्वचा कैंसर, मोतियाबिंद, आदि जैसी बीमारियां फैलती हैं। फिर ऐसे भी प्रमाण मिल रहे हैं कि पराबैंगनी-बी की मात्रा हमारे वायुमंडल में बढ़ने से फसलों का उत्पादन प्रभावित हो घटने लगता है व बीमारियों से बचने की हमारी प्रतिरोधक क्षमता भी कम होने लगती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि समताप मंडल में ओजोन-परत का निर्माण न हुआ होता, तो वर्तमान में हमारे आसपास दिखाई देने वाले जीवन-स्वरूपों (मानव भी शामिल) का उद्भव शायद ही संभव होता। लेकिन हाल के वर्षों में अंटार्टिका के ऊपर यह ओजोन परत अक्तूबर के महिने में बड़े नाटकीय ढंग से कुछ पतली होने लगती है और कुछ सप्ताहों के पश्चात फिर स्वाभाविक स्तर पर पहुंच जाती है। इस क्रिया के दौरान 1999-2000 में इस परत में 60 प्रतिशत तक की कमी देखने में आयी है। अब चूंकि यह कमी पृथ्वी के एक विशिष्ट छोटे स्थानीय भाग में देखने में आयी है, इसलिए बोलचाल की भाषा अपनाते हुए इसे - ओजोन परत में छेद के नाम से पुकारा जाता है।

ओजोन-परत पतली होने की प्रथम जानकारी 1974 में अमरीकी वैज्ञानिक मेरियो मोलिना और एफ. शेरवुड रौलैंड ने अपने शोध पत्रों में प्रस्तुत की थी पर इसका वास्तविक ज्ञान 1985 में ही स्पष्ट हुआ। उपलब्ध आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 1970 के दशक में अंटार्कटिका के

ऊपर ओजोन परत में छेद प्रकट होने लगे थे। अब तो ये छेद योरप, अमरीका, कनाडा, जापान व ऑस्ट्रेलिया के ऊपर भी दिखने लगे हैं।

वर्तमान ग्लोबल परिदृश्य में ओजोन-परत लगभग सभी क्षेत्रों में पतली होती जा रही है। ऑस्ट्रेलिया के ऊपर तो 1960 के दशक से ही इसका स्तर 5-9 प्रतिशत दर से कम होता रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से ज्ञात हो चुका है कि समतापमंडल में 1 प्रतिशत ओजोन कम होने पर क्षोभमंडल में पराबैंगनी विकिरण का प्रवेश 1-2 प्रतिशत बढ़ जाता है और चर्म रोगों में 5-6 प्रतिशत वृद्धि ऐसे क्षेत्रों में होने लगती है। इसीलिए विश्व भर में सबसे अधिक चर्म-रोगी ऑस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं, जहां के दो-तिहाई निवासी किसी न किसी प्रकार के चर्म-कैंसर से ग्रसित हो जाते हैं। इसी वजह से सभी ऑस्ट्रेलियाई नागरिक कई प्रकार के चर्म-रोग प्रतिरोधक लोशन, क्रीम व तेलों का उपयोग अपनी त्वचा सुरक्षा के लिए, धूप में निकलने पूर्व, नियमित रूप में करने लगे हैं। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है, वहां के क्रिकेट खिलाड़ी जो अपने-अपने चेहरों पर सफेद पट्टीनुमा रंग पोते खेल के मैदान में उतरते हम सब देखते हैं।

ओजोन में कमी का मुख्य कारक है-'क्लोरीन गैस'। लेकिन सौभाग्यवश क्लोरीन भारी गैस होने के कारण समतापमंडल की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच पाती है, जहां ओजोन परत विद्यमान है। घरेलू व सामूहिक रसायनों से उत्पन्न क्लोरीन गैस निचले वायुमंडल में विघटित हो वर्षा में बह जाती है। लेकिन कई ऐसे स्थायी (स्टेबल) और हल्के रसायन भी हैं, जो वाष्पशील स्वभाव के होते हैं व विघटित होने पर क्लोरीन निर्माण करते हैं, जिन्हें 'ओजोन डिप्लीटिंग सबस्टेन्सेस' (ओ.डी.एस.) कहा जाता है। क्लोरो फ्लोरो कार्बन (सी.एफ.सी.), कार्बन टेट्राक्लोराइड (सी.टी.सी.), मिथाइल क्लोरोफार्म और हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन (एच.सी.एफ.सी.) आदि। कुछ ऐसे ओ. डी. एस. हैं, जिनमें क्लोरीन होती है। फिर ब्रोमीन युक्त ओ. डी. एस. भी होते हैं, जैसे मिथाइल ब्रोमाइड, हाइड्रो ब्रोमोफ्लोरो कार्बन (एच.बी.एफ.सी.)। रेफ्रिजरेटर, एयरकंडिशनर्स, अग्नि शामक, ड्राइक्लीनिंग, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सफाई, कृषीय धूमकों (फ्यूमिगेंट), प्लास्टिक फोम / डिब्बों, आदि के निर्माण व उन्हें क्रियाशील बनाये रखने के लिए उपयोग किये गये एरोसोल नोदक (प्रपेलंट), विलायक और प्रशीतक पदार्थ (रेफ्रिजरेंटस्) इन गैसों के कारक हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि ओ. डी. एस. निचले वायुमंडल में दशकों तक दृष्टिगोचर सूर्य रोशनी से अप्रभावित, पानी में लगभग अघुलनशील व ऑक्सीकरण प्रतिरोधक क्षमता सहित, शांत रह कर कायम रहते हैं। लेकिन 18 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर जब 11 प्रतिशत हवा उनके नीचे रह जाती है, तब इस ओ. डी. एसों के स्थायीपन में परिवर्तन नजर आने लगता है। इस ऊंचाई पर सौर-स्पेक्ट्रम के तीव्र पराबैंगनी विकिरण प्रभाव में इनका विघटन क्लोरीन परमाणु व अन्य अवशिष्टों में होने लगता है। इस प्रकार ओजोन-परत के भीतर क्लोरीन प्रजनन हो जाने पर एक एकल क्लोरीन परमाणु ओजोन के एक अणु से संयुक्त होने के प्रयास फलस्वरूप एक श्रृंखला अभिक्रिया (चेन रिएक्शन) गतिमान हो जाती है व जिसके परिणाम स्वरूप एक क्लोरीन परमाणु लगभग 1,00,000 ओजोन अणुओं को तोड़ कर वहां से हटा देता है। ऐसा होने का मूल कारण है कि इस श्रृंखला अभिक्रिया के अंत में भी क्लोरीन गैस का प्रजनन लगातार होता रहता है और ओजोन परत भी घटती रहती है। इसीलिए छोटी मात्रा में भी सी.एफ.सी. सांद्रण रोकना एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।

इन (ओजोन क्षयकारक पदार्थों) के अलावा 'ग्रीन हाउस गैस' (जी.एच.जी.) के प्रजनन स्तर में लगातार होती वृद्धि का प्रभाव ओजोन मात्रा को घटाता है। जी.एच.जी. प्रजनन के लिए उत्तरदायी स्रोत हैं - जल वाष्प, ऊर्जा प्राप्ति के लिए जीवाश्म ईंधन व लकड़ी का दहन से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का उत्सर्जन, पशु/मानव विष्ठा व जैव सड़ाव से मीथेन उत्सर्जन रसायनिक उर्वरकों के उपयोग व प्रत्येक दहन क्रिया से नाइट्रसऑक्साइड (NO) प्रजनन और हाइड्रोकार्बन व नाइट्रोजन के ऑक्साइड के प्रभाव में क्षोभ मंडल के भीतर मीथेन गैस निर्माण। लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि यदि वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से जी.एच.जी. विद्यमान न होतीं, तो पृथ्वी का वर्तमान तापमान 33^0 सें. कम होता था। इसलिए

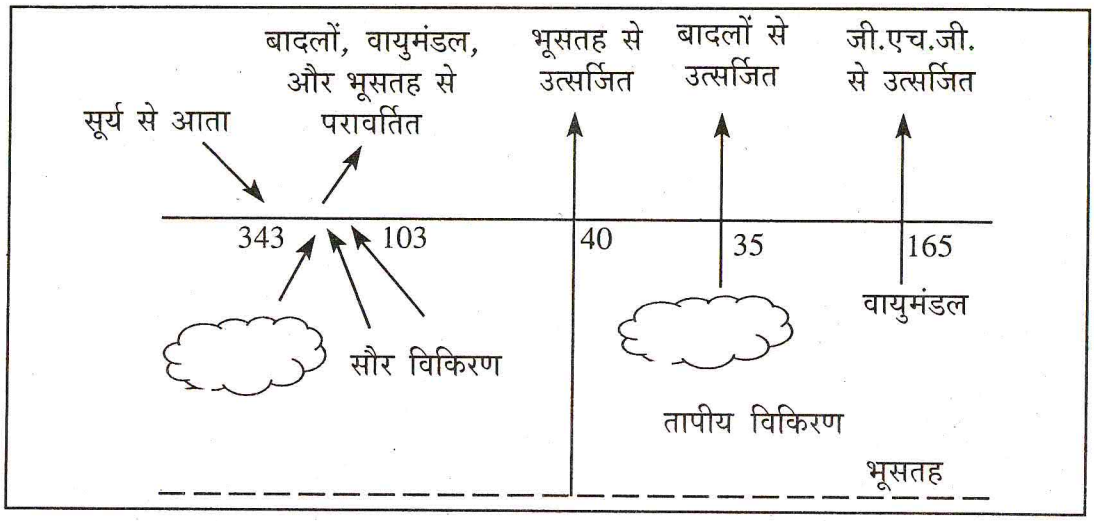

चित्र-2 : ऊर्जा संतुलन (टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान)

पृथ्वी में जीवन स्वरूपों के रहने लायक तापमान को बनाये रखने में, इन गैसों की उपस्थिति (एक स्तर तक) आवश्यक है।

दरअसल, वायुमंडल एक ग्रीन-हाउस के समान कार्य करता है और पृथ्वी को ऊष्मा-रोधी कवच प्रदान करता है। यह ग्रीन-हाउस प्रक्रिया इस प्रकार कार्य करती है - सूर्य द्वारा आपतित विकिरण से प्राप्त सूक्ष्म तरंग दैर्घ्य का एक-तिहाई भाग परावर्तित हो जाता है और बाकी बचे भाग का अवशोषण वायुमंडल, समुद्र, बर्फ, भूमि व जंतु-वनस्पति समूह कर लेते हैं। फिर भूसतह द्वारा कुछ ताप वायुमंडल में सवेद्य-ताप (सेन्सिबल हीट) और वाष्पीय-वाष्पोत्सर्जन रूप में निष्कासित होता है। इसके अलावा भूसतह द्वारा लंबी तरंगदैर्घ्य विकिरण का ऊर्जा परावर्तन भी होता है, जिसका कुछ भाग वायुमंडलीय खिड़की को पार कर बाहर निकल जाता है व थोड़ा भाग वायुमंडल में समा जाता है (चित्र-2)।

इस प्रकार ऊर्जा सांद्रण व लंबी तरंगदैर्घ्य वाले अवरक्त विकिरण उत्सर्जन के मध्य का संतुलन भी कई कारणों से बदल सकता है, जैसे - सूर्य ऊर्जा विकिरण आउट्पुट में परिवर्तन, पृथ्वी परिक्रमा-पथ में सूक्ष्म परिवर्तन व ग्रीन हाऊस प्रभाव। इनमें उत्तरजीविता के लिए ग्रीन-हाउस प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसको नियंत्रित स्तर पर बनाये रखने की क्षमता मानव के हाथ में है।

सूक्ष्म तरंगदैर्घ्य विकिरण तो वायुमंडल को पार कर सकता है, पर लंबी तरंगदैर्घ्य विकिरण का कुछ भाग वायुमंडल के ऊपरी ठंडे भाग में उपस्थित सूक्ष्म मात्रिक (ट्रेस) गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है। इन्हीं ट्रेस गैसों को जी.एच.जी. नाम दिया गया है।

विश्व में औद्योगिक क्रांति आरंभ होने के पश्चात से मानव गतिविधियों के फलस्वरुप प्राकृतिक रूप में विद्यमान जी.एच.जी. सांद्रण वायुमंडल में बढ़ने के साथ-साथ कई नये क्लोरोफ्लोरोकार्बनों का समावेश होने लगा है - विकसित देशों में अधिक व विकासशील देशों में कम मात्रा में। इन गैसों के प्रजनन में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव मुखर हो पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करने लगा है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार इन गैसों के प्रभाव में वर्ष 2100 तक पृथ्वी के तापमान में 1-3.5^0 सें. वृद्धि होने की संभावना है। इस तापमान वृद्धि के फलस्वरूप कई अन्य परिवर्तन होने लगेंगे - वृष्टि की मात्रा व पैटर्न में परिवर्तन, वनस्पति फैलाव व मृदा नमी में अंतर, ट्रॉपिकल चक्रावत तूफानों की तीव्रता में वृद्धि, ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ गलने व तापीय विस्तारण द्वारा समुद्री सतह की ऊंचाई में वृद्धि, आदि से वर्तमान पारिस्थितिकीय संतुलन अस्त-व्यस्त हो जायेगा। समुद्री सतह की ऊंचाई बढ़ने पर समुद्रतटीय निचले इलाके पानी में डूब जायेंगे। पिछले 100 वर्षों में समुद्री पानी की

ऊंचाई में 10-25 सेंमी. वृद्धि मापी गयी है और इस विषय में लगाये गये अनुमानों से ज्ञात होता है कि आगामी 100 वर्षों में, अर्थात वर्ष 2100 पहुंचने तक, इसमें 46 सेंमी. तक वृद्धि की संभावना है ।

समुद्री पानी की सतह में 1 मीटर वृद्धि होने पर बंगलादेश का 30,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पानी में डूब जायेगा, तो दूसरी ओर भारत के समुद्रतटीय इलाकों में रहने वाले 71 लाख नागरिक विस्थापितों की श्रेणी में आ जायेंगे ।

तापमान वृद्धि के कारण पानी भंडार में कमी व नयी बीमारियों का उद्‌भव होने लगेगा और कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा । फिर जो जीवन-स्वरूप बदलते हुए पर्यावरण के साथ ताल-मेल बैठाते हुए शीघ्रता से समयानुकूल अनुकूलन करने में असमर्थ हैं, वे विलोप हो जायेंगे । इस क्रिया में वनस्पतियाँ सबसे अधिक प्रभावित होंगी, क्योंकि उनकी स्थानांतरण क्षमता (अन्य की अपेक्षा) सबसे कम समझी जाती है - 4 से 200 किलोमीटर प्रति शताब्दी । यही कारण हैं कि जी.एच.जी. नियंत्रण को वर्तमान में इतना महत्व दिया जा रहा है ।

उल्लिखित चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संसार में जीवनदायनी की भूमिका निभाने वाली ओजोन परत का विनाश मुख्यतः मानव जनित कारणों से हो रहा है । बीसवीं सदी में मानव ने औद्योगिक क्षेत्र में असाधारण सफलता अर्जित की है, जिसका मुख्य आधार रहा है - अधिक से अधिक ऊर्जा उत्पादन कर मानव के निजी लाभ के लिए उपयोग करना । औद्योगिकरण की इस दौड़ में, मानव इसके हानिकारक प्रभावों की अनदेखी करता रहा । लेकिन 1960 के दशक से पर्यावरण सुरक्षा/ संतुलन बनाये रखने की चिंता विश्व के सभी देशों में जागृत होने लगी और पर्यावरण प्रदूषण रोक-थाम के विषय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गंभीरता से विचार विमर्श किया जाने लगा है । पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाये गये हैं, उदाहरण के लिए-

अ) विकसित देशों में 1.1.1996 से सी.एफ.सी. उत्पादन निषेध कानून व उनके स्थान पर वैकल्पिक रसायनों का अनिवार्य उपयोग, जो महंगे होने के बावजूद पर्यावरण अनुकूल होते हैं । भारत, चीन आदि को इसमें वर्ष 2006 तक छूट दी गयी है । अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों का मानना है कि भारत में सी.एफ.सी. का वर्तमान उत्पादन स्तर ओजोन-परत को प्रभावित नहीं करेगा ।

1990 के दशक में लगभग 20 मिलियन टन सी.एफ.सी. प्रतिवर्ष वायुमंडल में रिहा की जाती थी । लेकिन इस रोक के कारण वर्तमान में इसका स्तर 1 प्रतिशत दर से कम हो रहा है । यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि 1980 के दशक में सी.एफ.सी. का वायुमंडल में रिहा होने का स्तर 5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रहा था ।

ब) जी. एच. जी. व अन्य विषैली गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में आयोजित क्योटो-सम्मेलन (दिसंबर 1998) की विज्ञप्ति के अनुसार भारत सहित 150 अन्य देश वचनबद्ध हैं कि वर्ष 2012 तक इन गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत कम करने का प्रयास सभी राष्ट्र करेंगे ।

अब चूंकि भारत में सभी प्रकार की ऊर्जा आवश्यकताओं की आपूर्ति का प्रमुख आधार कोयला है, इसलिए उल्लिखित लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए भारत सरकार ने नये निर्देश जारी कर दिये हैं, जिसके अनुसार देश के सभी बिजली संयंत्रों को वर्ष 2001 से वाश किया 34 प्रतिशत राख युक्त कोयला उपयोग करना अनिवार्य होगा । वाहन प्रदूषण में कमी लाने के लिए भारत में कम सल्फर युक्त (25 प्रतिशत) डीजल उत्पादन 1 अक्तूबर 1999 से आरंभ कर दिया गया है और अब देशभर में जनवरी 2000 से कम सल्फर युक्त डीजल और फरवरी 2000 से लेड विहीन (अन लेडेड) तेल उपयोग के लिए वितरित किया जाने लगा है ।

इसके अलावा, सी. एफ. सी. व ओ. डी. एस. प्रजनन को नियंत्रित रखने के लिए भारत सरकार ने अगस्त-2000 में गज़ट विज्ञप्ति द्वारा ओजोन डिप्लीटिंग नियम-2000 को लागू कर दिया है । इसके अंतर्गत सभी उत्पादनों में सी.एफ.सी. उपयोग को वर्ष 2003 से विशेष करार कर दिया गया है और ओ.डी.एस. उत्पादनों को नियंत्रित कर धीरे-धीरे समाप्त करने का प्रावधान बनाया गया है ।

ओजोन-परत को सुरक्षित बनाये रखने में इस प्रकार के नियम मील के पत्थर साबित हो सकते हैं, बशर्ते विश्व के सभी देश इनका ईमानदारी से पालन करें ।

❐❐❐

टिप्पणियां

1. आतंक खिलते हुए फूलों का

उक्त शीर्षक पढ़ कर आप अवश्य ही आश्चर्य में पड़ जायेंगे कि क्या सुगंध और सौंदर्य बिखेरने की जगह खिलते हुए फूल आतंक भी फैला सकते हैं ? जी हां ! फूल भी आतंक फैला सकते हैं और ये आतंक है बांसों में खिलते हुए फूलों का । संपूर्ण विश्व में मानव समुदाय पादप जगत के घास कुल (फेमिली-ग्रेमिनी) के पौधों का सदैव चिर ऋणी बना रहेगा क्योंकि उसे अपने भोजन का मुख्य अंश यथा गेहूं, चावल, मक्का, गन्ना, ज्वार, बाजरा तथा अन्य कई फसलें इसी कुल से प्राप्त होती हैं । इसी कुल का एक मुख्य पौधा बांस भी है जो मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी अंतिम यात्रा तक उसका साथी रहता है ।

साधारणतया सभी बांस एक से दिखते हैं और संपूर्ण विश्व में इसकी लगभग 1000 से भी अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं । दक्षिण पूर्वी एशिया तथा दक्षिणी अमरीका में बांस बहुतायत में पाया जाता है । भारत में बांस की लगभग नौ प्रजातियां अधिकतर सूखे भागों के पर्णपाती वनों में पायी जाती हैं परंतु कश्मीर घाटी में बांस नहीं पाया जाता है । देश के पूर्वोत्तर राज्यों यथा असम एवं मिजोरम, में बांस के जंगल बहुतायत से मिलते हैं । बांस भारत की ग्रामीण जीवन-धारा का एक मुख्य घटक है । मिजोरम, असम एवं गुवहाटी आदि में बांस की बनी हुई हस्त शिल्प वस्तुएं देश-विदेश में बेहद लोकप्रिय हैं । इन हस्त शिल्प वस्तुओं के उत्पादन ने इन क्षेत्रों में कुटीर-उद्योग का रूप धारण कर लिया है और बेरोजगारी को दूर करने में सहायक सिद्ध हो रही हैं ।

लेकिन, इन्हीं बांसों का दूसरा पहलू आतंक से भरपूर है । असम के उत्तरी कछार की पहाड़ियों और मिजोरम के जंगलों में मार्च-अप्रैल के दिनों में बांस हल्के पीले रंग के फूलों से आच्छादित हो जाते हैं । बांसों पर पीले-पीले फूलों की प्रकृति की सजावट किसी पर्यटक या किसी कवि के लिए तो सुंदरता और मधुरता का संदेश दे सकती है परंतु यहां के निवासियों को इन फूलों में अकाल, बर्बादी और मौत के आतंक का संदेश दृष्टिगोचर होता है । देश के इन पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बांस के भरपूर जंगल हैं । बांस के ये जंगल यूं तो इन क्षेत्रों में खुशहाली का पर्याय माने जाते हैं । लेकिन ये खुशहाली हर 50 वर्षों बाद तबाही और अकाल का पर्याय बन जाती है । कारण ! हर 50 वर्षों बाद बांसों का पुष्पित होना । अपने संपूर्ण जीवन-काल में बांस एक बार ही पुष्पित होता है और उसके बाद सूख जाता है । अमूमन बांसों पर फूल आने का यह अंतराल 50 वर्ष का होता है । फूल आने के बाद जैसे ही बांस के बीज (जिन्हें स्थानीय स्तर पर बांस का चावल भी कहा जाता है) बनते हैं, खेतों और जंगलों में रहने वाले चूहे इन बीजों पर मक्खियों की भांति टूट पड़ते हैं । बांस के इन बीजों को खाने से उनकी प्रजनन शक्ति में असाधारण बढ़ोत्तरी हो जाती है जिसके फलस्वरुप लाखों की संख्या में चूहे पैदा हो जाते हैं । बांस के बीज समाप्त हो जाने पर टिड्डियों की भांति ये चूहे खेतों में लगी फसलें, फल और यहां तक कि घरों में रखा हुआ अनाज एवं अन्य खाद्य-सामग्रियां, सब-कुछ चट कर जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं बर्बादी और अकाल ।

मिजोरम में इस भयावह त्रासदी को 'मिजोरम मौतम' के नाम से जाना जाता है । मिजोरम में बांस के फूलों जन्य यह 'मौतम' पिछली बार 1954 में हुआ था । प्रकृतिजन्य इस विडंबना ने ही 1959 में मिजोरम में उग्रवाद को जन्म दिया था जिसकी आग में जलकर वहां का इतिहास-भूगोल सब गड्ड-मड्ड हो गया ।

1954 में मिजोरम के बांस के जंगल खूब फूले और बांस के बीजों को खाकर लाखों चूहे पैदा हो गये । इन असंख्य चूहों ने वहां के निवासियों के खेतों-खलिहानों, बाग-बगीचों की फसलों और यहां तक कि घरों में रखी हुई खाद्य-सामग्रियां, सब कुछ हजम कर गये । इस भयावह त्रासदी ने "मिजोरम फेमाइन फ्रंट" को जन्म दिया जो बाद में 'मिजो नेशनल फ्रंट' बना ।

बांस के फूलों के नियंत्रण या इनके बीजों को खाकर लाखों की संख्या में पैदा होने वाले चूहों के नियंत्रण के लिए अभी तक कोई भी कारगर उपाय नहीं खोजे जा सके हैं । क्षेत्रीय किसानों एवं ग्रामीणों के पास

बांस के फूलों को नष्ट करने के लिए अपनी पुरातन विधि का उपयोग करके खिलने वाले बांसों को काटकर उनके फूलों को जलाकर नष्ट कर देने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि पूर्वोत्तर राज्यों में बांस बहुतायत से उगता है और इसका वैज्ञानिक प्रबंधन करके इसका उपयोग इस क्षेत्र के आर्थिक विकास एवं ग्रामीण रोजगार के लिए किया जा सकता है ।

अरुणिम वेद
द्वारा- डॉ. राज किशोर,
844, नाका मुजफ़रा, फैजाबाद (उ. प्र.)

2. अणुओं की खेती

जैवतकनीकी अर्थात् 'बायोटेक्नोलॉजी' में हुई प्रगति के फलस्वरूप किसी भी जीवकारी के आनुवंशिक गुणों के निर्धारक जीनों को दूसरे किसी भी जीवधारी में स्थानांतरित करना संभव हो गया है । पौधों, जानवरों तथा सूक्ष्मजीवों में किसी एक का जीन दूसरे में बिना किसी बाधा के प्रविष्ट कराया जा सकता है । जब किसी जीवधारी में बाहर से जीन स्थानांतरित किया जाता है, तो वह जीन जीवधारी के 'जीनसमूह' में एकीकृत होकर अपना कार्य करने लगता है, जीन प्राप्तकर्ता जीवधारी को 'ट्रांसजीनी जीव' या 'ट्रांसजेनिक आर्गेनिज्म' कहा जाता है । यदि 'जीन प्राप्तकर्ता' कोई फसली पौधा है, और प्रविष्ट कराया गया जीन किसी बहुलक या पॉलीमर अथवा महत्त्वपूर्ण औषधि का उत्पादन कर सकता है, तो ऐसे ट्रांसजेनिक पौधों की बृहत् पैमाने पर खेती, 'अणुओं की खेती' या 'मॉलिक्यूलर फार्मिंग' कही जाती है । जिस प्रकार आज आनुवंशिक रूप से रूपांतरित जीवाणु, औषधीय प्रोटीन तथा औद्योगिक एंजाइमों के उत्पादन में नियमित रूप से प्रयुक्त हो रहे हैं, उसी तरह पौधों तथा जानवरों को भी अभियंत्रित करके मूल्यवान जैव अणु - जैसे वैक्सीन से लेकर 'जैवविघटनीय प्लास्टिक' तक को उत्पन्न किया जा सकता है ।

पौधों का प्रयोग प्राकृतिक रसायनों तथा उपयोगी पदार्थों के स्रोत के रूप में प्राचीन काल से ही किया जा रहा है । स्वाद-सुगंध के रसायन, दवाइयां, रंग, रबर तथा वाष्पशील तेल के मुख्य स्रोत पौधे ही रहे हैं । अब यह संभव हो गया है कि - इन पौधों से कुछ जीनों को निकालकर या इनमें प्रविष्ट कराकर, इनके उत्पादों के गुण बदले जा सकते हैं, या एकदम नये प्रकार के उत्पादों के गुण बदले जा सकते हैं, या एकदम नये प्रकार के उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं । मॉलिक्यूलर फार्मिंग का एक सफल प्रयोग रेपसीड या तोरिया के पौधों में लॉरिक एसिड का उत्पादन करने में हुआ है । लॉरिक एसिड उद्योगों के लिए एक मूल्यवान पदार्थ है । इसका प्रयोग साबुन, डिटर्जेंट, तलसक्रियक आदि के निर्माण में किया जाता है । प्राकृतिक रूप से पौधों में लॉरिक एसिड बहुत कम मात्रा में निर्मित होता है; क्योंकि निर्माण के तुरंत बाद वह एक दूसरे प्रकार के अम्ल 'मिरिस्टिक एसिड' में बदल जाता है । मुक्त लॉरिक एसिड के संचय के लिए जिम्मेदार एंजाइम को 'कोड' करने वाले एक जीन को 'कैलिफोर्निया बेट्री' नामक वृक्ष से तोरिया के पौधे में प्रविष्ट कराया गया, जिससे तोरिया का पौधा भारी मात्रा में लॉरिक एसिड उत्पादन करने लगा । अब ट्रांसजेनिक तोरिया की खेती वाणिज्यिक स्तर पर की जा रही है ।

इसी तरह यूरोप के वैज्ञानिकों ने विटामिन प्रचुर टमाटर विकसित किया है । इस ट्रांसजेनिक टमाटर में बीटा-कैरोटिनॉयड की मात्रा चार गुना अधिक है । बीटा-कैरोटिनॉयड का प्रयोग विटामिन-ए के निर्माण में होता है । इस रूपांतरित टमाटर में लाइकोपीन नामक पदार्थ की भी मात्रा दुगनी पायी गयी है । यह टमाटर हृदयरोग तथा कैंसर को रोकने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

ऐसा ही एक अन्य ट्रांसजेनिक उत्पाद है - गोल्डेन राइस । इस चावल में भी बीटा-कैरोटीन की मात्रा अधिक है । इसके उपयोग से एशिया तथा अफ्रीका के निवासियों के भोजन में विटामिन-ए की कमी को दूर किया जा सकेगा । यू.एस.ए. के वैज्ञानिकों ने ट्रांसजेनिक आलू विकसित किया है, जिसमें मानव-दुग्ध प्रोटीन-बीटा केसीन उत्पन्न होगा । इसका उद्देश्य शिशुआहार या बेबीफूड में गोदुग्ध के स्थान पर वानस्पतिक खाद्य डालकर आहार की गुणवत्ता सुधारना है ।

मॉलिक्युलर फार्मिंग के प्रयोग द्वारा वर्तमान प्लास्टिक के विकल्प के रूप में जैवविघटनीय बायोप्लास्टिक बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। वर्तमान के प्लास्टिक पेट्रोलियम के उपजात हैं, और जैवविघटनीय नहीं हैं। इसके विपरीत बायोप्लास्टिक पीएचए और पीएचबी शतप्रतिशत जैव विघटनीय है। इनके निर्माण के लिए चार जीनों की आवश्यकता होती है, जिनमें से दो जीन लगभग सभी पौधों में मौजूद होते हैं। अत: केवल दो जीनों को बाहर से प्रविष्ट कराने की आवश्यकता है परीक्षण के तौर पर जब शेष दो जीनों को आलू तथा 'अराबिडाप्सिस' नामक पौधों में स्थानांतरित किया गया, तो इन पौधों में भारी मात्रा में पीएचए तथा पीएचबी प्लास्टिकों का निर्माण हुआ। इससे वैज्ञानिकों को आशा जगी है कि - औद्योगिक स्तर के बायोप्लास्टिक का उत्पादन संभव हो सकेगा।

तंबाखू का पौधा जैवतकनीकी प्रयोगों के लिए सर्वथा उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इसे आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित करना अपेक्षाकृत सरल है। साथ ही यह पौधा जैवसंहति के रूप में खूब पत्तियाँ भी पैदा करता है। अत: इसकी हरी पत्तियों में वांछित अणुओं को पैदा करने के लिए इसे एक आदर्श फैक्टरी के रूप में देखा जा रहा है। अमरीका के केंटुकी राज्य में दुनिया की सबसे पहली जैवसंसाधन सुविधा या बायोप्रॉसेसिंग-फैसिलिटी की स्थापना की गयी है, जो भेषज-अणुओं के उत्पादन के लिए तंबाकू के पौधों को संसाधित करेगी। जिन उत्पादों को बीज में पैदा कराना हो तो उनके लिए मक्का, सोयाबीन तथा कनोला को उपयुक्त समझा जा रहा है।

भेड़, बकरी, सुअर, गाय तथा चूज़ों को आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित करके कई प्रकार के नये प्रोटीनों का उत्पादन कराया जा रहा है। ये प्रोटीन विशेषकर चिकित्सा-उद्योग के लिए उपयोगी हैं। हाल ही में बकरियों को 'स्पाइडर वेब प्रोटीन' अर्थात् मकड़ी के जाले का प्रोटीन उत्पन्न करने के लिए सफलतापूर्वक अभियंत्रित किया गया है। इस प्रोटीन को बायोस्टील कहा जा रहा है।

ऐसा सोचा जा रहा है कि - बायोस्टील पदार्थ-जगत में क्रांति ला सकता है। क्योंकि स्टील की तुलना में यह अधिक मजबूत, ज्यादा लचीला; तथा हल्का है। इसके संभाव्य प्रयोगों में हवाई जहाज, रेसिंग गाड़ियाँ, बुलेटप्रूफ कपड़े, टेंडन, लिगामेंट, लिंब्स आदि के निर्माण शामिल हैं।

चिकित्सा के क्षेत्र में मॉलिक्युलर फार्मिंग द्वारा कई उत्पादों को वाणिज्यिक स्तर पर उत्पन्न करने के प्रयास शुरू हो गये हैं। टेक्सास ए.एम. विश्वविद्यालय तथा 'ट्यूलेन मेडिकल सेंटर यूएसए' ने हैजे के विषाक्त पदार्थ (कॉलरा टॉक्सिन) के एक जीन-जो मौखिक प्रतिरक्षाजनक तथा वैक्सीन का काम करता है, को आलू के कंद (ट्यूबर) में स्थानांतरित करके अभिव्यक्त कराया। इस ट्रांसजेनिक आलू को जब चूहों को खिलाया गया, तो उनकी प्रतिरक्षा-शक्ति में वैसी ही वृद्धि हुई, जैसी उन्हें टीके (वैक्सीन) लगाने से होती है। खाद्य-टीके या 'एडिबल वैक्सीन' बनाने के लिए ट्रांसजेनिक आलुओं के अध्ययन से प्राप्त जानकारी का उपयोग ट्रांसजेनिक केला बनाने में किया जा रहा है। अब वह दिन दूर नहीं है - जब केला खाया, और टीका लग गया - संभव हो जायेगा। अब एक ही केले में कई प्रकार के टीके से संबंधित जीन प्रविष्ट कराने के प्रयास किये जा रहे हैं, जिससे एक ही बार केला खाने से कई बीमारियों के टीके एक ही साथ लग जायेंगे।

अणुकृषि अभी भी एक उभरती हुई उद्योग-विधा है। जैवप्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ अणुकृषि भी अधिक सक्षम होती जायेगी, और औद्योगिक रसायन, भेषजीय अणु, खाद्य-टीके, बायो-प्लास्टिक आदि भारी मात्रा में उत्पन्न किये जा सकेंगे।

3. वर्मीकल्चर

फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए खाद तथा उर्वरकों का प्रयोग काफी अरसे से किया जाता रहा है। रासायनिक उर्वरकों के लगातार अत्यधिक प्रयोग से भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी आ जाती है, साथ ही उर्वरकों से भूमिगत जल भी प्रदूषित होता है। इसके विपरीत कार्बनिक खादों - जैसे गोबर की खाद, कंपोस्ट, हरी खाद आदि के प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, और ये खादें पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करतीं। इसी

प्रकार की एक पर्यावरण हितैषी ख़ाद है - वर्मी कंपोस्ट, जो केंचुओं की मदद से बनाई जाती है।

केंचुए हमेशा से ही किसानों के मित्र माने जाते रहे हैं, क्योंकि ये मिट्टी को उपजाऊ बनाने का कार्य करते हैं। केंचुए मिट्टी में छेद करके जैविक अवशिष्ट पदार्थों को मिट्टी के साथ मिला देते हैं, और मिट्टी को हवादार बनाते हैं, जिससे पौधों की जड़ें बहुत अच्छी तरह बढ़ती हैं। केंचुए जब मिट्टी और विभिन्न आर्गेनिक पदार्थ खाते हैं, तो उनकी आंतों में विभिन्न प्रकार के जैवरासायनिक परिवर्तन होते हैं जिन्हें वे दानेदार मल के रूप में शरीर से बाहर निकाल देते हैं। मल के रूप में निकला पदार्थ मिट्टी को उपजाऊ बनाता है।

हाल के वर्षों में केंचुओं की उपयोगिता को भलीभाँति पहचाना गया है और उनका उपयोग घर के कूड़े-करकट और अवशिष्ट पदार्थों को उत्तम ख़ाद के रूप में परिवर्तित करने में किया जा रहा है। ख़ाद का उपयोग फसलों की उपज बढ़ाने में तो होगा ही इसके द्वारा अवशिष्ट निपटान या कचरा फेंकने की एक बड़ी समस्या हल हो जाती है। आजकल ठोस उपजात पदार्थ, जैसे - नगरपालिका का कचरा, रसोईघर का कचरा, खेती के अवशेष, खाद्य संसाधन से उत्पन्न उपजात पदार्थ भारी मात्रा में जमा हो जाते हैं, जिन्हें उठाकर दूर फेंकना एक बड़ी समस्या बन जाती है। इस समस्या को सुलझाने का एक बड़ा ही अच्छा रास्ता निकला है - वर्मीकल्चर द्वारा कचरे को ख़ाद में परिवर्तित करना। जैविक अवशिष्टों को ख़ाद में बदलने के लिए कुछ विशिष्ट जाति के केंचुए अधिक सक्षम होते हैं। इन्हीं केंचुओं का पालन कर वर्मीकंपोस्ट बनाने में उनका प्रयोग किया जाता है। केंचुआ-पालन ही वर्मीकल्चर कहा जाता है।

दुनिया में केंचुओं की लगभग 3000 प्रजातियाँ हैं। इनमें से 350 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती हैं। केंचुओं को उनके रहने के स्थान के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया है। प्रथम वर्ग में जमीन की ऊपरी सतह पर रहने वाले केंचुए हैं, जो पत्तियों का कूड़ा-कचरा खाकर जीवित रहते हैं। दूसरे वर्ग के केंचुए भूतल से थोड़ा नीचे रहते हैं, और मिट्टी से सनी पत्तियाँ खाते हैं। जमीन के अंदर गहराई में रहने वाले तीसरे वर्ग के केंचुए हैं, जो मिट्टी के साथ उपलब्ध ऑर्गेनिक पदार्थों को खाते हैं। वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए विशेषकर धरातल पर रहने वाले तथा ऊपरी मिट्टी की तह में रहने वाले केंचुओं का प्रयोग किया जाता है।

भारत में केंचुओं पर कई संस्थानों में शोधकार्य चल रहा है, तथा इन संस्थानों द्वारा वर्मीकंपोस्ट बनाने की विधियां विकसित की गयी हैं। वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए मुख्यतः तीन चीजों की आवश्यकता होती है, और ये हैं - उपयुक्त प्रजाति के केंचुए, कंपोस्ट बनाने के लिए वर्मीबेड या क्यारी और ऑर्गनिक अवशिष्ट अर्थात् कूड़ा-कचरा। वर्मीकंपोस्ट की क्यारियां गढ़े के रूप में, कांक्रीट टैंक के रूप में या लकड़ी के क्रेट के रूप में बनायी जा सकती हैं। क्यारियों का आकार 2 मीटर लंबा, 1 मीटर चौड़ा और 1 मीटर ऊंचा अथवा इससे बड़ा हो सकता है। वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले क्यारी में ईंट के छोटे टुकड़े और बालू की एक 5 सेंमी. मोटी परत बिछा दी जाती है। यह परत जलनिकास का कार्य करती है। इसके ऊपर बलुई मिट्टी की 15 से 20 सेंमी. मोटी तह बिछा दी जाती है। अब गड्ढे में केंचुए प्रविष्ट कराये जाते हैं। 3 मीटर लंबे 1 मीटर चौड़े और 1 मीटर ऊंचे गड्ढे के लिए करीब 500 केंचुओं की आवश्यकता होती है। केंचुओं को धान के पुआल की पतली तह से ढककर उस पर पानी छिड़क दिया जाता है। 30 दिनों में केंचुओं की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। तब इसके ऊपर अवशिष्ट पदार्थ, कूड़ा-कर्कट परत दर परत डाले जाते हैं और उन पर समान रूप से पानी का छिड़काव किया जाता है। स्थानीय सुविधा तथा वस्तुओं की उपलब्धता के आधार पर वर्मीकंपोस्ट बनाने की विधि में कुछ भिन्नता पायी जाती है। कहीं-कहीं केंचुए प्रविष्ट कराने के बाद उनके ऊपर कूड़ा-कचरा डालकर गड्ढे को एक ही दिन में भर दिया जाता है, और कहीं-कहीं तीन-तीन दिन के अंतर पर कचरा डालकर गड्ढे को भरा जाता है। गड्ढा भर जाने पर उसे पत्तियों या पुआल से ढककर नियमित पानी देते रहना होता है। गड्ढा भरने की विधि के अनुसार एक महीने से तीन महीने के अंदर कंपोस्ट ख़ाद बनकर तैयार हो जाती है।

घरेलू कचरे तथा कृषि-फार्म के उपजात पदार्थों को उपयोगी कंपोस्ट के रूप में बदलने के लिए दुनियाभर में शोध कार्य चल रहे हैं। ऐसे ऑर्गेनिक अवशिष्ट, जिनमें नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। अत: वर्मीकंपोस्ट के कूड़े में गोबर, यूरिया, मल-कीचड़, पशुओं का मूत्र, मछली की छीलन आदि मिला दिये जाते हैं। कंपोस्ट तैयार हो जाने पर उसे खुदाई करके निकाल लिया जाता है। खुदाई करके कंपोस्ट की ढेर लगा देने से, या खुदाई के पूर्व पानी देना बंद कर देने से केंचुए निचली तह पर चले जाते हैं, जिससे उन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है। खाद को चूर्ण बनाकर, छलनी से छानकर या वैसे ही फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

भारत में वर्मीकल्चर पर शोध कर रहे संस्थानों में 'भवालकर अर्थवर्म रिसर्च इंस्टीट्यूट' पुणे; 'एम. एस. स्वामिनाथन रिसर्च फाउंडेशन' चेन्नई; कुमायूँ विश्वविद्यालय तथा कुछ प्राइवेट कंपनियाँ शामिल हैं, करीब 10 वर्ष पहले पुणे स्थित एक संस्था तथा देश के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने वर्मीकल्चर तकनीक को देश के 13 राज्यों में आगे बढ़ाने का कार्य शुरू किया। इन्हीं संस्थाओं ने 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय मध्यप्रदेश' में एक वर्मी कंपोस्ट इकाई की स्थापना की है, जो प्रतिमाह करीब 5 टन वर्मीकंपोस्ट उत्पन्न करती है। महाराष्ट्र की एक कृषि जैवतकनीकी संस्था ने जैवविघटनीय औद्योगिक उपजात - जैसे काग़ज की मिलों की बेकार लुगदी, चीनी मिलों के द्रव बहि:स्राव आदि को कंपोस्ट में बदलने की विधि विकसित की है। संस्था द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों में घर की महिलाओं तथा बागवानों को घर के कूड़े तथा बगीचे के कचरे से वर्मीकंपोस्ट बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। मुंबई में कुछ महिला स्वयंसेवी संस्थाओं ने कचरे की समस्या हल करने में वर्मीकल्चर के प्रयोग का प्रचार अभियान शुरू किया है। महाराष्ट्र के बहुत से किसान वर्मीकल्चर तकनीक अपना रहे हैं, तथा अंगूर, केला, नारियल, सब्ज़ियों और फूलों की पैदावार बढ़ाने में वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग कर रहे हैं। वर्मीकल्चर अपनाकर हजारों किसानों ने रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग 90% तक कम कर दिया है। वर्मीकंपोस्ट को रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।

डॉ. आर. एन. पांडेय
नाभिकीय कृषि एवं जैव तकनीकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

4. कार्बनिक रसायनों से फैलता प्रदूषण

प्रकृति में हमें चारों ओर जो कुछ भी परिलक्षित है- वायु, जल, थल, पेड़-पौधे, जीव-जंतु आदि - ये सब पर्यावरण के अंतर्गत आता है। पूर्णत: और अंशत: मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप ऊर्जा प्रकारों, विकिरण स्तरों, भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं तथा जीवाणुओं की संख्या में परिवर्तन द्वारा पर्यावरण पर होने वाला हानिकारक प्रभाव प्रदूषण कहा जा सकता है। यह प्रदूषण मानव समाज को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। ऐसे पदार्थ जो प्रकृति में नहीं पाये जाते किंतु मानवीय क्रियाओं के कारण उत्पन्न होकर वातावरण में पहुंच जाते हों एवं परिणामत: प्रकृति की संरचना परिवर्तित एवं कुप्रभावित हो जाती हो, संदूषक कहलाते हैं। अनुमेय मात्रा से अधिक होने पर ये दुष्प्रभाव उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। मानव सभ्यता के विकास एवं सुख-सुविधाओं के लिए विकसित किये गये संसाधन, जिनमें कार्बनिक रसायनों का महत्वपूर्ण स्थान हैं, प्रदूषण फैलाने में भी अग्रणी है। आज हर व्यक्ति के अंदर लगभग 250 ऐसे रसायन हैं जिनका अस्तित्व ही द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व नहीं था। युद्ध में प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण तथा बाद में नवीनता एवं विकास के लिए पेट्रोलियम से प्राप्त रसायनों से अनेक आवश्यक कार्यों के लिए नये यौगिकों का संश्लेषण आरंभ हुआ और तब से लगभग 75000 नये रसायनों का औद्योगिक रूप से उपभोक्ता उपयोग कर रहे हैं।

वायुमंडल को प्रदूषित करने वाले कार्बनिक पदार्थों में हाइड्रोकार्बन एवं कार्बनिक विविक्त पदार्थ आते हैं। वायुमंडल में प्रवेश करने के उपरांत प्रदूषक पदार्थ प्रकाश रासायनिक ऑक्सीकारक पदार्थ बनाते हैं। ये शक्तिशाली प्रदूषक अधिक अस्वास्थ्यकर होते हैं। ये पदार्थ धूम

(स्मॉग) उत्पन्न करते हैं जो आंखों एवं श्वसन तंत्र में जलन उत्पन्न करते हैं । ये पौधों को भी प्रभावित करते हैं । बहुचक्रीय ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बनों जैसे बेंजोपाइरीन, बेंजऐंथ्रासीन, क्रायसीन, बेंजोफ्लुओरेंथीन वायुमंडल में उपस्थित कुछ सक्रिय कैंसरजनी विविक्त पदार्थ हैं जिनके शहरी वायुमंडल में पाये जाने की संभावना अधिक रहती है । सी.एफ.सी. अर्थात् क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिकों का उपयोग रेफ्रेजरेटरों में प्रशीतक के रूप में प्लास्टिक फोम उत्पादन में तथा छिड़काव बोतलों में प्रोपेलेंट के रूप में होता है किंतु ये गैसीय पदार्थ वायुमंडल के सुरक्षा कवच ओजोन का क्षय करते हैं जिससे ओज़ोन छिद्र का निर्माण होता है जिससे सूर्य से आने वाले दुष्प्रभावी विकिरण वायुमंडल को प्रदूषित करते हैं तथा त्वचा पर विपरीत प्रभाव डालते हैं । पॉलीक्लोरोबाईफेनिल यौगिक प्लास्टिसाइज़र के रूप में तथा पेंट, रबर एवं कागज़ उत्पादों एवं स्याही के निर्माण में काफी उपयोग में लाये जाते हैं । यह ज्वाला मंदक, तापस्थायी तथा निष्क्रिय होते हैं । ये अत्यंत विषैले पदार्थ हैं । मनुष्यों में इनका प्रभाव बाल झड़ना, सिरदर्द, मतली, स्मृतिभ्रंश एवं अस्थियों व दांतों का क्षय है । इसके साथ ये कैंसर तथा जन्मजात रोग उत्पन्न करते हैं ।

आज जीवन के हर क्षेत्र में धातु, कांच एवं कागज़ के बजाय प्लास्टिक से बने सामान का उपयोग बढ़ गया है । प्लास्टिक के निर्माण में उपयोग में लाये अपशिष्ट जैसे पॉलीएथिलीन टरथैलेट, ऐल्किल फास्फेट एवं डाइऐमीन आदि से तो प्रदूषण होता ही है उपयोग के बाद प्लास्टिक के बने पैकिंग के सामान, बरतन आदि के कूड़े-करकट का निपटारा भी एक समस्या है । प्लास्टिकों का स्थायित्व अत्यधिक होता है एवं इनका जैविक अपघटन भी नहीं होता । इन्हें जलाकर नष्ट करने से विषैली गैसें तथा डाइऑक्सीन एवं फ्यूरान व्युत्पन्न उत्पन्न होती है जो अत्यधिक प्रदूषण फैलाती है । प्लास्टिक की फेंकी हुई थैलियां पशु चबा लेते हैं । वे आंतों में जाकर चिपक जाती हैं और पशुओं की मृत्यु का कारण बनती हैं । इस दिशा में अब जन-जागरूकता आयी है एवं पैकिंग के लिए प्लास्टिक थैलियों का निषेध किया जा रहा है । प्लास्टिक का पुनः चक्रीकरण द्वारा निर्माण भी आरंभ किया गया है । रासायनिक पुनः चक्रीकरण में प्लास्टिक के कूड़ा-करकट को नियंत्रित ताप से अपघटित कर उपयोगी पेट्रोलियम पदार्थ व रसायनों में बदला जा सकता है । जापान में इस प्रौद्योगिकी द्वारा बेकार प्लास्टिक को ईंधन तेल में परिवर्तित करने की विधि विकसित की गयी है ।

ऐरोमेटिक ऐमीन कार्बनिक प्रदूषकों का महत्वपूर्ण समूह है जो औषधियों, कीटनाशियों, रबर, रंजक, पेंट, स्याही, प्लास्टिक, चमड़ा एवं कागज उद्योग में प्रयुक्त होते है । ये चर्मरोग, कैंसर एवं उत्परिवर्तनजनी प्रभाव दर्शाते हैं । बेंज़ीडीन समूह के सदस्य कैंसरजनी एवं उत्परिवर्तनजनी हो सकते हैं जो स्पर्श, श्वसन एवं अंतर्ग्रहण के द्वारा मानव शरीर में प्रवेश करते हैं । प्रोटीनों के ताप अपघटन से, सुखाने-उबालने आदि क्रियाओं से, सिगरेट के धुंएं से ऐरोमेटिक ऐमीन बनते हैं । इनके अंतर्गत ऐनिलीन, बेंज़ीडीन, डाइक्लोरोबेंज़ीडीन, अल्फा एवं बीटा नेफ्थिल ऐमीन, फेनिल बीटा नेफ्थिल ऐमीन आदि आते हैं । ऑक्सीजन एवं क्लोरीन से युक्त ऐरोमेटिक यौगिक यथा फीनॉल, डाइफेनिल ईथर, डाइबेंज़ोफ्यूरान आदि कीटनाशी, जीवाणुनाशी एवं शाकनाशी के रूप में प्रयुक्त होते हैं । ये जल एवं मृदा के संदूषक कहे जा सकते हैं । क्लोरीन की मात्रा में वृद्धि के साथ इनकी विषालुता बढ़ती जाती है । शरीर का बजन घटना, लीवर की खराबी, हेपेटाइटिस एवं तंत्रिका तंत्र को होने वाली हानि इस विषालुता के कुछ लक्षण हैं । आज की सामाजिक मांग ने वर्णकों एवं रंजकों का प्रयोग बढ़ा दिया है । ऐज़ो, ट्राइफेनिल मीथेन, जैंथीन समूह के अनेक यौगिक आदि संपर्क या कपड़े पहिनने से हुए संपर्क से शरीर पर खुजली या चकते उत्पन्न कर सकते हैं । भोजन में प्रयुक्त रंगों एवं कुछ ऐ.जो. वर्णकों के कैंसरजनी प्रभावों पर जानकारी मिली है । वाहित मल, भोज्य पदार्थों के निर्माता उद्योगों एवं औद्योगिक सामानों की फैक्ट्रियों के अपशिष्ट, चर्मशोधन के उपोत्पाद बहिस्राव या अपवाही तंत्र से निकसित जल में कार्बनिक रसायन होते हैं जो अधिकांशतः ऑक्सीजन भोगी अपशिष्ट पदार्थ होते हैं । जल में घुली ऑक्सीजन का उपयोग कर ये यौगिक जीवाणुक क्रियाशीलता के कारण अपघटित

हो जाते हैं या इनका क्षय हो जाता है । इससे जल में विलेय ऑक्सीजन के सांद्रण में कमी आ जाती है जिससे जल जीवन का क्षय होता है एवं जल में दुर्गंध उत्पन्न होती है । जल आपूर्ति में समस्या उत्पन्न होती है एवं जल स्रोत का महत्व कम हो जाता है । ऑक्सीजन भोगी अपशिष्ट पदार्थों को प्रदूषकों की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि इनका निम्नीकरण ऑक्सीजन की कमी उत्पन्न करता है, परिणामतः जन जीवन नष्ट करता है । कपड़ों की धुलाई में काम आने वाले ऐल्किल बेंजीन सल्फोनेट एवं रेखीय ऐल्किल सल्फोनेट युक्त अपमार्जक ऐसे कार्बनिक प्रदूषक हैं जो अपशिष्ट जल के अतिसामान्य अवयव हैं एवं निम्नीकरण के लिए जलीय ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं । गैसोलीन व मोटर तेल के रूप में हाइड्रोकार्बन वर्षा जल के साथ बहकर जल स्रोत में मिल जाते हैं एवं प्रदूषण उत्पन्न करते हैं । बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि के लिए अनेक प्रभावी उर्वरकों एवं फसल कीटनाशियां का विकास हुआ है । ये कीट एवं खर पतवार-नाशी रसायन छिड़काव करने पर फसलों की तो रक्षा करते हैं किंतु जल, वायु एवं मिट्टी द्वारा पर्यावरण में व्याप्त हो जाते हैं । वायु द्वारा कीटनाशी अवशेष फसलों पर जम जाते हैं । ये नदियों एवं तालाबों में भी एकत्र हो जाते हैं एवं जल को प्रदूषित करते हैं जिससे जल जीवों पर विषैला प्रभाव पड़ता है । इनकी वायु में उपस्थिति से कुक्कट वर्ग भी प्रभावित होता है । पालतू पशु जैसे गाय, भैंस, सुअर बकरी आदि एवं मनुष्य इन कीटनाशियों को चारे एवं भोजन द्वारा ग्रहण कर इनके विषैले प्रभाव भुगतते हैं । उदाहरण के लिए डी.डी.टी. एक अत्यंत प्रभावी, मच्छर, मक्खी एवं फसल कीटनाशी सिद्ध हुआ जिसकी खोज के लिए डॉ. मुलर को नोबेल पुरस्कार मिला किंतु यह पर्यावरण में लंबे समय तक रहता है और विघटित नहीं होता और खाद्य श्रृंखला में समाहित होकर मनुष्यों, मछलियों, पशुओं एवं पक्षियों के वसीय ऊतकों में जमा हो जाता है और शरीर पर विषैला प्रभाव डालता है । प्रत्येक भारतीय की प्रतिदिन औसत खुराक में 0.27 मिग्रा. डी. डी. टी. होता है । मां के दूध में डी. डी. टी. पाया गया है जिससे शिशु भी इसके दुष्प्रभाव को झेल रहे हैं । भारत के अतिरिक्त चीन व मेक्सिको में इसका उत्पादन अभी भी जारी है । इसका प्रयोग अमरीका एवं यूरोपीय देशों में निषिद्ध हो गया है । इस श्रेणी के अन्य सदस्य जैसे गैमेक्सीन, ऐल्डिन, टोक्साफीन आदि कार्बनिक कीटनाशी फेफड़ों एवं तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं । पॉलीक्लोरीनेटेड कीटोन, कीटोन बनाने वाले संयंत्र के श्रमिकों में स्मृतिभ्रंश, जोड़ों में दर्द, वजन में अत्यधिक कमी, बोलने में लड़खड़ाहट आदि लक्षण पाये गये । चूहों में इससे लीवर की खराबी तथा कैंसर हो गया । फूलों एवं पत्तियों पर लगे सूक्ष्मदर्शी कृमियों को नाश करने वाले कार्बनिक रसायन डाइब्रोमोक्लोरोप्रोपेन के प्रभाव से इनको अधिकतर छिड़कने वाले श्रमिकों में बंध्यापन आ गया । यह कैंसरजनक भी पाया गया । पेंटा क्लोरोफीनॉल काष्ठ छेदक कीटों से काष्ठ की रक्षा करने में तथा फफूंद रोधी के रूप में प्रयुक्त होता है । यह कोशीय प्रोटीन एवं एंजाइमों का अवपक्षेण कर देता है । इन कीटनाशियों के विघटन के लिए सूर्य का प्रकाश ही प्राकृतिक स्रोत है लेकिन इस विघटन में काफी समय लगता है । कुछ का सूक्ष्म जीवों द्वारा भी विघटन होता है एवं अनेकों का विघटन नहीं होता । वायुमंडल में लगातार रहने वाले कार्बनिक संदूषकों द्वारा एस्ट्रोजन प्रभाव के भी सबूत मिले हैं । विगत 50 वर्षों में मनुष्य के औसत शुक्राणु संख्या में 42% की कमी आयी है एवं शुक्राणुओं की सक्रियता में भी कमी आयी है तथा जन्मजात दोषों में वृद्धि हुई है । कार्ब-फॉस्फेट कीटनाशी कशेरुकी जीवों के लिए अत्यंत विषैले होते हैं । लेकिन पर्यावरण में शीघ्र अपघटित हो जाते हैं । ये वर्न-गैस की भांति व्यवहार करते हैं ।

संश्लेषित कार्बनिक कीटनाशियों के दुष्प्रभावों को देखते हुए प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त कीटनाशियों एवं प्रदूषणरोधियों की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । सदाबहार नीम के वृक्षों का उपयोग प्रदूषण को कम करने का प्राकृतिक साधन है । नीम के बीज व पत्तियों से प्राप्त ऐज़ाडिरिक्टिन कम से कम 128 फसल कीटों के विकास में बाधक है । यह 0.1 भाग प्रति दस लाख की तनुता में भी प्रभावी है । नीम के बीज की गिरी में

थायोरेमोन नामक यौगिक है जो एक प्रभावी कीट प्रतिकर्षी है। संयुक्त राज्य अमरीका के पर्यावरण संरक्षण विभाग ने नीम उत्पाद मार्गोसन-ओ को फसलों के लिए कीटनाशी के रूप में मान्यता दी है एवं इसे पंजीकृत कर लिया है। नीम गिरी से तेल निकालने के बाद बने अपशिष्ट में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की मात्रा गोबर के खाद से अधिक होती है और इसके उपयोग से रासायनिक खाद का उपयोग कम किया जा सकता है।

नीम के वृक्ष में पत्तियों के विशाल सतह क्षेत्रफल के कारण प्रदूषित वातावरण से धूल एवं गैसों को अवशोषित करने की शक्ति है, जिससे वातावरण शुद्ध होता है। मुनगे की पत्तियां जल प्रदूषण को कम करती हैं। संश्लेषित कार्बनिक रसायनों का सीमित उपयोग एवं प्राकृतिक साधनों का अधिक उपयोग ही प्रदूषण नियंत्रण की दिशा में प्रभावी होगा।

प्रो. सुरेश गर्ग

रसायन विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर - 470 003 (म. प्र.)

भारत का कोहिनूर

कौन है अभेद्य ? कौन है वज्र ? आज इसका उत्तर हो सकता है सचिन तेंदुलकर, मगर इन संस्कृत शब्दों का अभिप्राय दरअसल विज्ञान की अनुपम रचना "हीरा" से है। भूगर्भ में दबे कार्बन का शुद्धतम रूप है हीरा। हालांकि कभी आंध्र-प्रदेश की कोल्लूर खान भारतीय हीरों की कोख थी, परंतु आज यह दंतकथा है। फिर भी इसी दंतकथा की एक बेजोड़ कहानी है कोहिनूर हीरा ! यह भारतीय हीरा आज भी विश्व के श्रेष्ठ हीरों में है।

कहा जाता है कि कोहिनूर 1655 में कृष्णा नदी के किनारे कोल्लूर की खान से मीर जुमला नामक हीरा व्यापारी को मिला, जिसने इसे औरंगजेब के जरिए शाहजहां को भेंट कर दिया। शाहजहां ने इसे नाम दिया "महान मुगल"। बाद में फारस के नादिरशाह ने मुगल सेना को हराकर यह हीरा प्राप्त कर लिया। हीरे का सौंदर्य और जगमगाती चमक को देखते ही उसके मुंह से निकला- "अरे, ये तो कोह-इ-नूर है !" कोह-इ-नूर का अर्थ है रोशनी का पर्वत। उस समय यह हीरा आठ सौ कैरेट का था।

नादिरशाह से महाराजा रणजीत सिंह तक पहुंचने के बाद यह हीरा फिर ईस्ट इंडिया कंपनी ने हथिया लिया और ब्रिटिश रानी विक्टोरिया को भेंट कर दिया। कुछ समय इस हीरे ने उनके मुकुट की शोभा बढ़ाई और आज लंदन संग्रहालय में शोभायमान है। परंतु आज यह सिर्फ़ 106 कैरेट का ही है।

एक वैज्ञानिक पत्रिका में छपे लेख में लेखक प्रमोद भार्गव का कहना है कि नये शोध के अनुसार हीरा प्राचीन भारत में सबसे पहले आर्यों ने खोजा परंतु इसे गहनों के रूप में 400 ईसा पूर्व में इटली ने इस्तेमाल करना आरंभ किया। प्राचीन भारत में हीरों के चार प्रकार माने जाते थे। सफ़ेद हीरे को ब्राह्मण, लाल वर्ण वाले को क्षत्रिय, पीले वर्ण वाले हीरे को वैश्य और काले रंग वाले हीरे को शूद्र कहा जाता था। वर्तमान में अपने देश में सिर्फ पन्ना में हीरे की खानें हैं। 'हीरा' की खानें अन्य 20 देशों में भी सक्रिय हैं।

डॉ. देवकी नंदन

A-1/304, ऋषिकेश, स्वामी समर्थ नगर, अंधेरी, मुंबई - 400 053

ज्ञान स्वरूप

परम पिता की सृष्टि पर
ज्ञान की दृष्टि से
होते नित नूतन आविष्कार
पृथ्वी नहीं,
व्योम में पहुंचा मानव
हुआ स्वप्न दिवा, साकार
नाम विज्ञान
मंत्र शुद्ध, सार निःसार का
क्षण में प्रलय,
क्षण में भरे रस प्राण का
छवि अनुपम
दिव्य रंगों से खेली इसने होली,
सार्वभौम सिद्धांत इसके
धरा शुष्क के मृत कण भी बोलें बोली
खोलता नभ, जल, थल भेद
ब्रह्मांड के ज्ञान अपूर्ण का,
आतुर है
मानव विज्ञान से
करने को वरण परिपूर्ण का ।

हेमवती नंदन 'हेम'
शोध छात्र, भौतिकी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय,
नैनीताल - 263 001 (उत्तरांचल)

प्रकाश

अंधियारे के दलदल में जब होता मन निराश ।
तब-तब ज्ञान का प्रकाश पाने हम दौड़ते ईश्वर के पास ।।
बहुत तेजी ($3x10^8$ मी./से.) से आता है प्रकाश,
बहुत तेजी से चला जाता है ।
लेकिन उसे ही पार पाता है, जो उसके मन को भाता है ।।
कभी प्रकाश सीधे जाता है, कभी टेढ़े ।
कभी माध्यम में रहता है, कभी उससे परे ।।
कभी लाल होता है, कभी पीला, कभी हरा, कभी बैंगनी ।
सब मिलने से होता है परम शाश्वत एकवर्णी ।।
न्यूटन, हाइजेन, आइन्सटीन एवं फर्मी ।
कोई भी नहीं जान सका, प्रकाश का अनोखा रूप ।
लेजर, पेजर, मेजर या आधारित हो बल्ब के तेवर ।
यह माध्यम ईथर रहता है किधर ।।
या मिले गुरू का प्रकाश, या भौतिकता का प्रकाश ।
सबों में समायी है उसकी खटास-मिठास ।।
इस अलौकिक दिव्य प्रकाश की घर-घर अलख जगायें ।
आओ अंतःकरण में सूर्य की चेतना बढ़ायें,
क्लेश कलह का अंधियारा मिटायें ।।

संजय गोस्वामी
गुणवत्ता नियंत्रण अनुभाग, नाभिकीय पुनर्चक्रण ग्रुप,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

- संपादक

पिघलता ग्लेशियर

मैं उस घटना को कभी नहीं भुला सकता ! और जब भी मैं उस घटना को याद करता हूं तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । मैंने आखिर क्यों मनप्रीत को उसके मैके भेज दिया था । मैं उसे नहीं भेजता तो शायद वह इस हादसे से बच जाती । वह मौत के मुंह से बच जाती लेकिन भाग्य की विडंबना कितनी क्रूर होती है, भाग्य अपनी पर आता है तो सब कुछ तबाह कर देता है लेकिन मैं इसे भाग्य की विडंबना कहूं या मनुष्य के हाथ की विडंबना, खैर जो भी हो... मनप्रीत मुझे रह रह कर याद आ रही थी ।

मनप्रीत का चेहरा याद आते ही घटनाएं एक के बाद एक चलचित्र की भांति स्मृति पटल पर उभरने लगी ।

कितना चाहता था मैं मनप्रीत को । यौवन की दहलीज़ पर कदम रखते ही उसकी सुंदरता में चार चांद लग गये थे और मैं उसके चांद से मुखड़े को देख-देख अघाता नहीं था ।

हम दोनों को ही माउंटेनियरिंग का बड़ा शौक था । शुरू शुरू में हम रॉक क्लाइंबिंग में हिस्सा लिया करते थे । फिर हम इतने अभ्यस्त हो गये थे कि पर्वतारोहण हमारे लिए आसान हो गया । हम दोनों कमर में रस्सी बांधे और कुल्हाड़ी से अपने पैर जमाने के लिए छोटे-छोटे खांचे खोदते हुए आगे बढ़ते । जरा सी असावधानी हमारे लिए घातक सिद्ध हो सकती थी । लेकिन हमारे भीतर आत्म-विश्वास था । यही कारण था कि हमने कई उत्तुंग शिखरों की चढ़ाइयां कीं । ऐसे में कब हमें एक दूसरे से प्यार हो गया पता ही नहीं चला । एक बार तो मैंने उसे गिरने से बचाया । नहीं तो उसकी अकाल मौत हो जाती । लेकिन तब से वह मुझे बहुत गहराई से चाहने लगी थी ।

हमने कई शिखरों की साथ-साथ चढ़ाई की थी । अत: हमारी निकटता बढ़ती गयी । हम अधिकांशत: हिमालय के ग्लेशियरों पर चढ़ा करते थे । हमने पूर्वी हिमासय के कंचनजंगा, कुमाऊं तथा कश्मीर ग्लेशियर की साथ-साथ चढ़ाइयां कीं । हम बर्फ के गोले एक दूसरे पर उछालते, हंसी मजाक करते तो समय ऐसा गुजर जाता कि पता ही नही चलता । लेकिन जब कठिनाई में होते, नसों को सुन्न कर देने वाली बर्फानी हवाएं चल रही होतीं, तो उसे सहन करते हुए एक दूसरे का हौसला बढ़ाया करते ।

गंगोत्री ग्लेशियर पर चढ़ने के पश्चात् हमने एक दूसरे से विवाह कर लिया । यह शुक्र था कि हम दोनों के ही माता-पिता विवाह के लिए रजामंद हो गये थे । उन्होंने हमारा विवाह धूमधाम से तथा सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार किया । उसके बाद हम पर्वतारोहण पर नहीं जा पाये । हमने कुल्लू मनाली एवं रोहतांग का सैर सपाटा अवश्य किया । आमोद-प्रमोद में हमारा साल भर कैसे बीत गया पता ही नहीं चला । फिर उसकी मैके जाने की बड़ी तीव्र इच्छा हुई ।

मनप्रीत ने वहां कठिनाई से 15 दिन ही गुजारे थे कि हादसा हो गया । अगले दिन तो उसने यहां आने की पूरी तैयारियां भी कर ली थीं । मैं बड़ा खुश था कि मुझे एकाकीपन से निजात मिलेगी पर भाग्य को कुछ और ही मंजूर था ।

गंगोत्री ग्लेशियर की घाटी के आस-पास ही पहाड़ी पर उसका मैका था । मनप्रीत को मैंने मैके से आने के लिए खत लिख दिया था ।

मैं देहरादून रहता था । मैं उसकी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था । लेकिन होनी ने कुछ और ही लिखा था ।

मेरे पास उसकी मृत्यु की खबर आयी । केवल वही नहीं बल्कि उसका पूरा परिवार मौत की गोद में समा चुका था । मुझ पर अनभ्र वज्रपात हुआ ।

मैं इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था ।

उनकी मृत्यु का कारण ग्लेशियर था । ग्लेशियर पिघल चुका था तथा वहां बाढ़ आ गयी । बाढ़ इतनी भयानक थी कि घाटी तथा आसपास की पहाड़ियों पर

बसी बस्तियां पूरी तरह डूब गयीं । गांव, कस्बे यहां तक कि पहाड़ियों पर बसे शहर तक तबाह हो गये । ऐसी भयानक बाढ़ वहां पहले कभी नहीं आयी थी । मकान ऐसे उजड़ गये मानों वहां पहले उनका अस्तित्व ही नहीं हो । बड़े बड़े एवलांश पिघल कर घाटी में गिर रहे थे तथा आस पास के लोगों की जीवन लीला समाप्त करते जा रहे थे लेकिन पानी मकान की छतों से ऊपर पहुंच चुका था । बाढ़ में बड़े बड़े मकान धराशायी हो गये थे । बाढ़ से हिमस्खलन हो गया था । रास्ते रुक गये थे ।

मुझे याद है रोहतांग की सैर करते हुए हम एक बार हिमस्खलन में फंसते फंसते बचे । इस बाढ़ में बहुत कम लोग बचे । परिवार के परिवार डूब गये थे । मनप्रीत का परिवार भी ऐसे ही डूब गया ।

पता लगा कि मनप्रीत ने लोगों को बचाने में अपनी जान गंवा दी । इस बाढ़ ने इतनी तबाही मचाई कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । मनप्रीत के शहर में मातम छाया हुआ था ।

मनप्रीत तथा उसके परिजनों की मृत्यु से मुझे बहुत आघात लगा । मैं मनप्रीत की मृत्यु का सदमा बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था । बाढ़ आती है लेकिन इतनी भयानक तबाही की मुझे आशा नहीं थी । मेरे विवाह को दो साल भी नहीं गुजरे कि यह वज्रपात हुआ ।

मैं उसे इतना अधिक प्यार करता था कि उसके बिना जी नहीं सकता था । रह रह कर उसकी तस्वीर मेरे आंखों के आगे तैर जाती ।

भाग्य भी कितना क्रूर होता है । हंसते-खेलते जीवन में आग लगा देता है । उसकी दावानल लपटों में सब कुछ स्वाहा हो जाता है । सच ही कहा है क्रूर भाग्य के आगे किसका बस चलता है । यह क्रूर भाग्य ही तो था कि एक ही पल में सब कुछ उलट गया ।

एक ही पल में परिवार के परिवार भयानक बाढ़ में बह गये । इसे भाग्य की विडंबना नहीं तो और क्या कहेंगे ।

पर नहीं यह भाग्य की विडंबना नहीं थी । मनुष्य जानकर भी अंजान बन रहा था ।

यह बाढ़ उसी की करतूतों का फल था । वैज्ञानिकों ने लोगों को चेताया भी कि वहां ग्लेशियर के पिघलने से भीषण बाढ़ आ सकती है लेकिन लोगों ने इस चेतावनी की उपेक्षा कर दी ।

मुझे अचानक डॉ. आनंद की चेतावनी याद आ गयी । उन्होंने कहा था कि गंगोत्री ग्लेशियर पिघल रहा है और अगले दो सालों बाद वहां भीषण बाढ़ आ सकती है ।

वे मेरे अच्छे-खासे दोस्त थे । अक्सर वे अजमेर प्रवास के दौरान मुझसे मिलने आ जाते थे । दो वर्ष पहले उन्होंने मुझे यह चेतावनी दी थी । वे अल्मोड़ा स्थिति जी. बी. पंत इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन एंवायरनमेंट एंड डेवलपमेंट में एक पर्यावरण विशेषज्ञ हैं ।

काश मैं उनकी चेतावनी की ओर ध्यान देता तो मनप्रीत इस हादसे से बच जाती । मैं उसे मैके भेजता ही नहीं ।

ग्लेशियर कितना भयावह हो सकता है अब मुझे इसका अहसास हुआ । मानव ने स्वयं कुल्हाड़ी मारी और यह हादसा हुआ ।

अब मुझे डॉ. आनंद की एक एक बात याद आ रही थी । सच बात तो यह है कि मैंने ही उन्हें गंभीरता से नहीं लिया था ।

प्रदूषण के कारण ग्लोबल वार्मिंग हो रही है । मानव प्रदूषण फैलाने से बाज नहीं आ रहा है । ग्लोबल वार्मिंग से पर्यावरण पर मंडराते संकट ने ग्लेशियरों को भी अपने में समा लिया है ।

वास्तव में ग्लेशियर हिम-नदियां होती हैं जो हिमालय के भीतर स्थित घाटियों में संचित होती हैं । ये हिम-नदियां हिमालय के बाहरी या मध्य भाग में नहीं पायी जातीं ।

डॉ. आनंद ने मुझे हिम-नदियों का महत्व समझाया था । मैं विज्ञान का छात्र नहीं था बल्कि कला का छात्र था । माउन्टेनियरिंग मेरा शौक था और मैं इसका कोच भी था ।

डॉ. आनंद ने मुझे समझाया कि ये हिम-नदियां उत्तर भारत की प्रमुख नदियों में निरंतर जल आपूर्ति को

विशेष ध्यान रखती हैं ताकि यहां के पेड़-पौधे और वनस्पतियां हमेशा हरी भरी रहें। इतना ही नहीं जिन वन क्षेत्रों का छोटी-छोटी नहरों में वर्षा कम होने के कारण पानी कम हो जाता है उनका भी जल स्तर बनाये रखती हैं।

लेकिन ग्लोबल वार्मिंग से पर्यावरण का तापमान ज्यों ज्यों बढ़ता जा रहा है त्यों त्यों हिमालय के ग्लेशियर भी पिघल रहे हैं। डॉ. आनंद ने बताया कि ग्लोबल वार्मिंग से हिमालय के ग्लेशियरों को गंभीर क्षति पहुंच रही है। इसका सीधा प्रभाव उत्तर भारत में बहने वाली नदियों पर पड़ रहा है। जिसे आज भी कहीं कहीं सूखे के रूप में देखा जा सकता है।

डॉ. आनंद और मैं कई बार सैर सपाटे पर निकले थे। उनका और हमारा परिवार साथ-साथ ग्रीष्मकाल में निकला करता था। हमने पाया कि कितना कुछ बदल चुका है। अब सैर सपाटे में इतना आनंद नहीं आता था। भीषण गर्मी की तपन से बचने के लिए लोग हिल-स्टेशनों पर जाया करते हैं। लेकिन वृक्षों के कटाव के कारण अब तो यहां भी राहत नहीं मिलती। वृक्षों के कटाव और प्रदूषणों से ग्लोबल वार्मिंग बढ़ी है। अब गर्मी इतनी अधिक बढ़ी है कि वहां भी राहत नहीं मिलती है।

डॉ. आनंद मुझे नदियों के पास ले जाते। हमने देखा कि अधिकांश नदियां सूख चुकी हैं। कुछ नदियों में जगह जगह पर मात्र गीली भूमि दिखाई पड़ी।

डॉ. आनंद एक बार मुझे यमुना नदी के किनारे ले गये। उस समय मनप्रीत भी साथ में थी। हमने देखा कि यमुना नदी पूरी तरह से सूख चुकी है। डॉ. आनंद ने मुझे बताया कि यमुना नदी जैविक रूप से कभी की मृत हो चुकी थी। अन्य नदियों का भी यह हाल था।

डॉ. आनंद अपने साथ एक उपकरण भी लाये थे। उससे वह बताते कि ग्लेशियर अब तक कितना घट चुके हैं।

मैं मनप्रीत के साथ कई बार ग्लेशियरों पर पर्वतारोहण के लिए जा चुका था। डॉ. आनंद ने मुझे बताया था कि पूर्वी हिमालय के कंचनजंगा, कुमाऊं और कश्मीर ग्लेशियर दिन पर दिन कम होते जा रहे हैं। हमने डॉ. आनंद की बात को वहां पहुंचने पर सही पाया। ये ग्लेशियर काफी घट चुके थे। हिमालय के छोटे मोटे ग्लेशियर पहले ही नष्ट हो चुके थे। मनप्रीत और मैने खानलिंग ग्लेशियर को मृत पाया। वह पूरी तरह से सूख चुका था। ग्लेशियर के घटने का प्रभाव नदियों पर पड़ा। नदियां सूखती चली जा रही थीं। गंगा नदी का भी यही हाल था। गंगा नदी का मुख्य स्रोत है गंगोत्री। यह गढ़वाल हिमालय का सबसे बड़ा ग्लेशियर है।

डॉ. आनंद ने मुझे बताया कि गंगोत्री ग्लेशियर एक किलोमीटर प्रतिवर्ष की दर से घटता जा रहा है। उन्होंने चेतावनी दी थी कि आज से दस वर्ष पश्चात् ये ग्लेशियर पूरी तरह नष्ट हो जायेंगे। मुझे वह सन् भी याद है। उन्होंने यह बात सन् 2025 में कही थी। इस हिसाब से 2035 में ये ग्लेशियर पूरी तरह नष्ट हो जायेंगे। उनकी इस चेतावनी को पांच वर्ष बीच चुके थे। यानी पांच वर्ष और शेष रहे थे जब हिमालय के ग्लेशियर पूरी तरह समाप्त हो जायेंगे।

मुझे याद है डॉ. आनंद ने यह भी चेतावनी दी थी कि ग्लेशियरों के नष्ट होने से पहले ही उत्तर भारत को प्रलय का सामना करना पड़ेगा। ग्लेशियरों के नष्ट होने से पहले ही लोगों को बाढ़ की गंभीर समस्या से जूझना होगा। बाढ़ से घाटी के आस पास पहाड़ों पर रहने वाले लोगों की जीवन लीला समाप्त हो सकती है।

और इसका कारण स्पष्ट था। हिमालय का 17 प्रतिशत भाग ग्लेशियरों से घिरा हुआ था। और इनमें कई हजार क्यूबिक मीटर पानी समाया हुआ था।

डॉ. आनंद ने मुझे बताया कि यदि धरती का औसत तापमान बढ़ने से ग्लेशियरों की अंश मात्र बर्फ भी पिघल जाये तो धरती पर जल प्रलय हो सकता है।

डॉ. आनंद ने मुझे एक और पहलू समझाया कि धरती पर प्राकृतिक बर्फ की बदौलत ही पानी का संतुलन बना हुआ है और हमारी जलवायु स्थिर है। यदि हिमालय के ग्लेशियरों को क्षति पहुंचती रही तो पानी का संतुलन बिगड़ जायेगा और हमारी जलवायु भी अस्थिर हो जायेगी।

डॉ. आनंद मुझे हिमझीलों के पास ले गये। मनप्रीत भी साथ में थी।

डॉ. आनंद ने कहा कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण ही हिमालय के ग्लेशियर हिमझीलों में परिवर्तित हो रहे हैं। हमने यह पाया कि ये झीलें प्रतिदिन चौड़ी होती जा रही थीं और संख्या में बढ़ती जा रही थीं। इसका मुख्य कारण भी ग्लोबल वार्मिंग से बर्फ का पिघलना है। मुझे डॉ. आनंद की आज एक एक बात याद आ रही थी।

उन्होंने बताया था हिमालय के ग्लेशियरों को जितनी तेजी से क्षति पहुंच रही है उतनी तेजी विश्व के अन्य ग्लेशियरों में दिखाई नहीं पड़ती।

अचानक डॉ. आनंद का फोन आया, "प्रकाश, मैं आज शाम की फ्लाइट से रवाना हो रहा हूं। रात्रि के नौ बजे तक तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगा।"

"ठीक है मैं तुम्हें रिसीव करने एयरपोर्ट पहुंच जाऊंगा।"

डॉ. आनंद ने मुझसे कहा, "नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है, मैं सीधा तुम्हारे घर पहुंच जाऊंगा।"

"ओ. के. ..." मैंने उत्तर दिया।

मैंने डॉ. आनंद के आने की प्रतीक्षा की। यान ने ठीक समय पर लैंडिंग की। डॉ. आनंद टैक्सी करके मेरे घर आये। उनके आते ही मैं फफक फफक कर रो पड़ा।

उनकी भी पलकें भीग गयीं, "मुझे भाभी की मौत का बड़ा दुख है।" उन्होंने बात प्रारंभ की, "लेकिन होनी को कौन टाल सकता है।" डॉ. आनंद ने मुझे धैर्य बंधाते हुए कहा।

"नहीं डॉक्टर यह होनी नहीं थी। मैंने ही तुम्हारी चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया और मनप्रीत को मैके भेज दिया।" मैंने अश्रुओं को पोंछते हुए कहा।

"यह चेतावनी केवल मेरी नहीं थी। भारत ही नहीं विश्व के कई वैज्ञानिकों ने यह चेतावनी दी थी। भारत के वैज्ञानिक प्रो. सईद हसनन ने प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'न्यू साईंटिस्ट' में इस चेतावनी को सर्वप्रथम प्रकाशित करवाया। उसके पश्चात् कई अन्य वैज्ञानिकों के भी इस संबंध में लेख प्रकाशित हुए। लेकिन ये लेख आम जनता तक नहीं पहुंचे क्योंकि भारत में विश्व के अनुपात में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है जो पत्रिकाएं पढ़ते है फिर विज्ञान की पत्रिकाएं तो और भी कम।"

"हां यही कारण है कि आम जनता इन निष्कर्षों से अनभिज्ञ ही रही है।"

लेकिन चेतावनी दे भी दी जाय तो आम जनता उसे गंभीरता से नहीं लेती। क्या हुआ कांडला पोर्ट पर चक्रवाती तूफान की सूचना पहले दे दी गयी थी लेकिन लोग नहीं संभले। आखिर चक्रवात ने वहां तबाही मचा दी तब उनके होश ठिकाने आये। ऐसे अनेक दृष्टांत दिये जा सकते हैं। डॉक्टर आनंद ने दुखपूर्वक कहा।

"हां, डॉक्टर, तुम तो मेरे दोस्त थे, तुमने मुझे चेताया भी लेकिन मैंने ही अनसुना कर दिया था। और उसी का परिणाम है कि मैंने मनप्रीत को खो दिया।" मैं फिर सुबक उठा।

"इसमें दोष तुम्हारा नहीं है आम मानसिकता का है। मैंने तो स्वयं के प्रयोगों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले थे।"

"काश मैं तुम्हारी चेतावनी को मान लेता।" मैंने पश्चाताप करते हुए कहा।

"लेकिन यह शुक्र मनाओ कि तुम वहां नहीं पहुंचे, यदि तुम वहां पहुंच गये होते तो तुम्हें जिंदगी से हाथ धोना पड़ता।" डॉक्टर आनंद ने मुझे तसल्ली देते हुए कहा।

"डॉक्टर ऐसा हो जाता तो अच्छा ही होता, मैं बिना मनप्रीत के जी कर क्या करूंगा।" उसे याद करते हुए एक बार मेरे अश्रु फिर छलछला आये।

"धीरज रखो, प्रकाश, समय सबसे बड़ा बलवान है वह हर दुख को कम कर देता है।" आनंद ने सांत्वना दी।

"डॉ. आनंद मुझे नहीं पता था कि ग्लेशियर इतना भयावह होता है। मैं समझता था कि साधारण बाढ़ आयेगी और उसे झेल लिया जायेगा।"

"लेकिन ग्लेशियरों में कई हजार क्यूबिक मीटर पानी समाया हुआ होता है और यदि तापमान बढ़ने से अंशमात्र भी ग्लेशियर की बर्फ पिघल जाये तो भयंकर बाढ़ें आ सकती हैं। तुमने देखा कि इससे भारी जान और माल की क्षति हुई। केवल मनप्रीत का ही शहर नहीं बल्कि आस पास के गांव तथा कस्बे इस बाढ़ के हत्थे चढ़ गये।

"हां डॉक्टर, परिवार के परिवार ढह गये । मकान खंडहरों मे बदल गये । मृत मवेशियों की संख्या की तो गिनती ही नहीं की जा सकती थी ।"

"लेकिन मुसीबत तो अब और भी अधिक बढ़ेगी । हिमालय की अधिकांश नदियों में अब भयंकर बाढ़ें आ जायेंगी । और इस तबाही का सिलसिला जारी रहेगा । मानव ने स्वयं ही यह तबाही मोल ली है । ग्लोबल वार्मिंग उसी की देन है ।"

"क्या अब कुछ नहीं किया जा सकता है ?" मैंने प्रश्न किया ।

"हां, किया जा सकता है मानव को युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा । प्रदूषण को रोकना ही नहीं होगा उसे कम करने के उपाय भी करने होंगे । वृक्षों की घनी - केनोपी युद्धस्तर पर लगानी होगी । इससे हम अन्य स्थानों के ग्लेशियर पिघलने से रोक सकेंगे । और अधिक तबाही को भी रोक सकेंगे । लेकिन मैं जानता हूं कि ऐसा नहीं होगा । इसके और भी भयंकर परिणाम सामने आयेंगे । अगले पांच सालों में ही उत्तर भारत की सभी नदियां सूख जायेंगी । पूरे उत्तर भारत में अकाल पड़ जायेगा । उससे निजात मिलना कठिन होगा ।"

"समझ में नहीं आता, डॉक्टर, कि लोग इतने संवेदनहीन क्यों हो गये हैं ? क्यों वे खुद का भला भी नहीं सोच सकते ?"

"यही मानव की त्रासदी है । वह जानकर भी अनजान बना रहता है । कुछ करना नहीं चाहता । मानव की स्वार्थपरता ने ही उसे लील लिया ।"

"और इसमें उन भोले भाले लोगों की भी इहलीला समाप्त हो जाती है जिनका कोई दोष नहीं होता ।" बेचारी मनप्रीत...उसका क्या दोष था ?" मैंने डॉक्टर से कहा ।

मुझे फिर मनप्रीत की याद आ गयी । किस तरह वह इस हादसे का शिकार हो गयी थी । उसका चेहरा याद आते ही मेरे अश्रु फिर निकल आये ।

डॉ. आनंद मुझे सांत्वना देकर चले गये । इसके अलावा वे कर भी क्या सकते थे । पर मेरा दुख कम नहीं हुआ । मनप्रीत का मुझे बहुत बड़ा सदमा लगा ।

कई दिन बीत गये पर यह सदमा कम नहीं हुआ । मनप्रीत की तस्वीर मेरी आंखों के सामने से हटती नहीं थी । और उसे याद करके बार बार मेरे अश्रु छलछला आते ।

और फिर पांच साल बाद की स्थिति को याद करता तो मेरा दिल दहल उठता । क्या होगा जब सभी नदियां सूख जायेंगी ? जिसके साथ कुछ बीतती है उसे ही यह भयावह एहसास होता है । मैं कल्पना करके सिहर उठता । मुझे डॉ. आनंद की चेतावनी बार बार याद आ रही थी ।

हरीश गोयल
59 शास्त्री नगर, अजमेर - 263 001 (राज.)

'वैज्ञानिक' के प्रधान संपादक सम्मानित

लगभग पिछले २० वर्षों से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा. प. अ. केंद्र मुंबई की त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' के संपादन से जुड़े एवं वर्तमान प्रधान संपादक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल को अभी हाल में उनकी विशिष्ट संपादन योग्यता के लिए सम्मानित किया गया । यह सम्मान डॉ. कोठियाल को "इंडियन सोसायटी ऑफ हैल्थ, एन्वायरनमेंट, एज्यूकेशन एंड रिसर्च" (इशीर) की जोधपुर शाखा (पंजीकृत) ने दिया है । इस सम्मान के अंतर्गत 'इशीर' द्वारा एक प्रशस्ति-पत्र तथा मानद चिन्ह दिया गया । आपने पत्रिका के संपादन कार्य के साथ-साथ विभिन्न ज्वलंत विषयों पर ३७ संपादकीय, तथा २४ वैज्ञानिक लेख लिखे हैं । इससे पूर्व, १९९९ में, विज्ञान परिषद, प्रयाग ने डॉ. कोठियाल को हिंदी में विज्ञान लोकप्रियकरण में उल्लेखनीय योगदान के लिए 'विज्ञान वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया था ।

आप कई प्रोफेशनल संस्थाओं के आजीवन सदस्य होने के साथ-साथ 'नेशनल सेंटर फॉर साइंस कम्यूनिकेटरस, मुंबई' से संबद्ध हैं ।

'वैज्ञानिक' परिवार की ओर से आपको हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं ।

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. पी सी आधारित स्वचालित टी एल डी (TLD) बैज रीडर तकनीकी का हस्तांतरण

विकिरण क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मी को उसे प्राप्त होने वाली विकिरण मात्रा को नापने के लिए एक बैज लगाना पड़ता है । भा. प. अ. केंद्र में विकसित और निर्मित इस बैज में तीन ताप संदीप्त (थर्मो ल्यूमिनिसेंस) डोज मापक, ऊर्जा विभेदक छन्नक बीटा, X-किरणों और गामा विकिरणों में भेद कर सकते हैं । इन बैजों को बैज रीडर में रखकर उन पर पड़ने वाली विकिरण मात्रा को ज्ञात किया जाता है । यह मात्रा व्यक्ति को प्राप्त विकिरण-डोज को दर्शाती है ।

कर्मचारियों के बैजों को पढ़ने के लिए एक स्वचालित पठन यंत्र (ऑटो रीडर) का विकास केंद्र के रिएक्टर सुरक्षा एवं प्रणाली प्रभाग ने किया है । यह व्यक्तिगत कंप्यूटर (पी.सी.) आधारित, ताप संदीप्त डोज रीडर है, जो बैज में स्थित डोज मापियों को नियंत्रित ताप ऊर्जा प्रदान करता है । तात्क्षणिक निर्गत प्रकाश (दीप्ति वक्र संकेत) को नापकर कुल समाकलित निर्गत प्रकाश को रोंजन (R) की इकाइयों में यंत्र-पटल पर दर्शाता है । सर्व प्रक्रियाएं पी सी से नियंत्रित होती हैं । यह यंत्र लगभग 100 सेकंड / बैज की दर से एक साथ 50 बैजों को 90 मिनटों में पढ़ सकता है ।

इस पीसी आधारित स्वचालित टी. एल. डी. बैज रीडर (मॉडल TLDBR 7B) और इससे संबंधित सॉफ्टवेयर की तकनीकी जानकारी न्यूक्लियॉनिक्स सिस्टम्स प्रा. लि. हैदराबाद को नॉन-एक्सक्लूसिव आधार पर दी गयी है ।

2. स्पेक्ट्रम स्थिरक 8k MCA कार्ड व संबंधित सॉफ्टवेयर तकनीकी का हस्तांतरण

यह एम सी ए (MCA) कार्ड वैयक्तिक कंप्यूटर में सीधे सीधे लगने वाला (प्लग-इन) कार्ड है, जिसमें 8k चैनल वाला 100 MHz विलकिंसन प्रकार का ADC है । इसमें स्पेक्ट्रम स्थिर करने, प्रगत विश्रांति कालसंशोधन (एडवांस्ड डैड-टाइम करेक्शन) करने और बहु चैनल स्केलिंग (मल्टी चैनल स्केलिंग) में कार्य करने की क्षमता है । भौतिकी, रेडियो रसायनिकी व विज्ञान की अन्य कई शाखाओं में अनुसंधान में उपयोगी न्यूक्लीय उपकरणों में इसका काफी इस्तेमाल होता है । इस तरह के चार कार्ड एक ही पी सी में लगाये जा सकते हैं । ये एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में, विभिन्न प्रकार से (मोड्स में) कार्य कर सकते हैं । यह कम दाम वाला, किफायती और बहु उद्देशीय, पी सी से सीधे जुड़ने वाला कार्ड है जो विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं हेतु उपयुक्त है ।

इलेक्ट्रॉनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र द्वारा विकसित इस तकनीक का हस्तांतरण न्यूक्लियॉनिक्स सिस्टम्स प्रा. लि., हैदराबाद को किया गया है ।

3. एक्स-किरण संदीपक का विकास

देश में प्रथम बार, विरल मृदा (रेअर अर्थ) पर आधारित संदीपक का विकास, भा. प. अ. केंद्र के रेअर अर्थ विकास अनुभाग में किया गया है । चिकित्सा क्षेत्र में, X-किरणों के तीव्रक (इंटेसिफायर) पटलों के उत्पादन में व न्यूक्लीय अनुप्रयोगों में X-किरणों के संसूचकों के तौर पर इनका काफी इस्तेमाल होता है । आयातित पदार्थ की तुलना में यह अपेक्षाकृत कम कीमती है और इसे देश में ही उपलब्ध पदार्थों से ही बनाया जा सकता है । X- किरणों संबंधी उपकरणों के स्थानीय निर्माता द्वारा प्रयोगात्मक स्तर पर बनाये गये तीव्रक पटलों से उच्च गुणवत्ता के बिंब बनते हैं । संदीपक (फॉस्फर) उत्सर्जन का इस्तेमाल कर, हरित और नील रंगों के प्रति संवेदी, दोनों प्रकार की फिल्में विकसित की जा सकती हैं । चिकित्सा रेडियो-चित्रण में, इन फिल्मों का फॉस्फर पर्दों के रूप में इस्तेमाल अधिक लाभकारी होगा । विरल मृदीय संदीपक के प्रयोग से, पारंपरिक संदीपक की अपेक्षा, मरीज को मिलने वाली उद्भासन (एक्सपोजर) मात्रा में काफी कमी की जा सकती है । प्रक्रिया को इष्टतम बनाने के लिए अभी अध्ययन जारी है । विभिन्न प्रकार की चिकित्सा रेडियो-चित्रण के लिए आवश्यक विभिन्न गति (स्पीड) वाले पटलों का विकास किया जा सकता है ।

4. प्रगत बायो गैस संयत्र विकसित

पारंपरिक बायो गैस संयंत्र में प्राय: गोबर से गैस उत्पन्न की जाती है । गोबर से गैस बनने में करीब तीस दिन लगते हैं । गैस मीथेन जनक सूक्ष्म जीवाणुओं की प्रक्रिया से बनती है । ठोस पदार्थ - गोबर व अन्य पदार्थ जैसे रसोई घर से निकला जैविक अपशिष्ट (फल और सब्जियों के पत्ते, छिलके व अन्य भाग आदि) प्राय: पाचक संयंत्र में डाले जाते हैं - पर इनसे कई बार संयंत्र के पाइप अवरुद्ध हो जाते हैं क्योंकि ठोस पदार्थों पर जीवाणुओं की प्रक्रिया ठीक से नहीं हो पाती है; और अपशिष्ट पदार्थों के बड़े अंश बच जाते हैं । प्राप्त गैस में मीथेन की मात्रा भी लगभग 50-55% तक ही होती है । नि:सादी (सेटलिंग) टंकी से प्राप्त खाद दुर्गंधमयी व एक जैसी नहीं होती है ।

इन सब को ध्यान में रखकर पारंपारिक बायो गैस संयंत्र तकनीक में दो मुख्य परिवर्तन किये गये हैं । मुख्य पाचक-संयंत्र से पहले एक 5 HP से चलनेवाला मिक्सर लुगदी बनाने के लिए लगाया गया है । ठोस-अपशिष्टों के लुगदी बनाकर उसे प्रिमिक्सर टैंकों में डालते हैं जहां से उसे पूर्वपाचक (प्रीडाइजेस्टर) टैंक में डालते हैं । यहां पर अपशिष्टों का गारा बनाने के लिए 1:1 में जल मिलाते हैं । प्राय: यहीं पर ठोस पदार्थों का (पारंपारिक संयंत्रों में) जीवाणुओं द्वारा ठीक से पाचन न होने के कारण संयंत्र अवरुद्ध हो जाता था । दूसरा परिवर्तन ताप रागी (थर्मोफिल) सूक्ष्म जीवाणुओं का पूर्वपाचक टैंक में प्रयोग जिससे अपशिष्ट पदार्थों का तेजी से निम्नीकरण (डिग्रेडेशन) होता है । ताप रागी जीवाणु, यहां ठीक से बढ़ सकें इस हेतु अपशिष्ट पदार्थों में गरम पानी मिलाया जाता है और तापमान 55 - 66 ^{0}C पर बनाये रखते हैं । गरम जल सोलर हीटर से प्राप्त करते हैं । दिन भर में केवल 1 घंटे की धूप ही इसके लिए पर्याप्त है ।

पूर्वपाचक से गारा (स्लरी) मुख्य टैंक में जाता है । जहां पारंपरिक गैस संयंत्र की तरह ही उसका अवायवीय (एनेरोबिक) निम्नीकरण, मैथोनो कोकस समूह के आर्काय बैक्टेरियाओं (archaebacteria) के संकाय (consortium) द्वारा करने से गैस उत्पन्न होती है । ये बैक्टेरिया रोमंथी पशुओं (ruminant animals) की आहार नाल में प्राकृतिक रुप में होते हैं । ये गारे में मौजूद सेलुलोजीय पदार्थों से मीथेन बनाते हैं ।

अपचित लिग्नोसेलुलोजीय और हेमी सेलुलोजीय पदार्थ, नि:सादी टंकियों में छोड़ दिये जाते हैं । करीब एक माह बाद, वहां से उच्च गुणवत्ता वाली खाद खोदी जा सकती है । जो दुर्गंध विहीन, जैविक पदार्थ से भरपूर होती है तथा भूमि में ह्यूमस (humus) को बढ़ावा देती है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है । प्राप्त गैस मिश्रण में मीथेन (70-75%), कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (10-15%) और जल वाष्प (5-10%) होती है ।

यह संयंत्र कैंटीनों से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थों हेतु बनाया गया है । भा. प. अ. केंद्र के परिसर में ही चल रहा है । इसके ठीक परिचालन हेतु प्राप्त अपशिष्ट पदार्थों का पृथक्कीकरण (सेग्रीगेशन) अत्यावश्यक है । जहां नारियल के खोल, प्लास्टिक के टुकड़े, चम्मच, टूटे बर्तन आदि मोटर को नुकसान पहुंचा सकते हैं, वहीं प्याज के छिलके, रस्सियां और प्लास्टिक पूर्व-पाचक में सूक्ष्म जीवाणुओं पर बुरा प्रभाव डालते हैं ।

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
बी 12 प्लाट-52, सेक्टर-17, वाशी, नवी मुंबई

अन्य समाचार :

1. मनुष्य की दीर्घायु का रहस्य

मनुष्य के जीवनकाल में वृद्धि के रहस्यों की खोज के क्षेत्र में प्रसिद्ध जीवशास्त्री प्रो. लेनार्ड गेरी के अभिनव प्रयासों ने आशा की किरणें उत्पन्न की हैं । हमारे दैनिक भोजन में कैलोरी स्तर निम्न कर देने से आयु में वृद्धि होने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । एक प्रयोगशाला अध्ययन में मूसकों को उनके सामान्य भोजन का मात्र 60% ही दिया गया और उनके 40 मास के संपूर्ण जीवनकाल में औसतन 16 महीने की वृद्धि प्रदर्शित हुई । संप्रति, जरावस्था पर शोध कर रहे वैज्ञानिकों में यह उत्कंष्ठा जागृत हो रही है कि कम भोजन लेने एवं क्षुधा पर नियंत्रण प्राप्त कर दीर्घायु प्राप्त करना किस प्रकार संभव होता है ? प्रो. गैरी उन वंशाणुओं की खोज कर रहे हैं जिनके कारण चूहों का

जीवनकाल वर्धन होता है। इनकी खोज कष्ट साध्य होती है ठीक उसी प्रकार जैसे किसी व्याधि विशेष के लिए उत्तरदायी वंशाणु। यद्यपि वृद्धावस्था के नियामक वंशाणुओं की खोज और भी दुरूह कार्य है तथापि यीस्ट (खमीर) में ऐसे कई वंशाणुओं की पुष्टि हुई है। खमीर में कुल 6200 वंशाणु होते हैं जब कि मनुष्य में लगभग 1 लाख। विगत 9 वर्षों के शोध परिणामों में विशिष्ट "यीस्ट जीन" और एक अन्य उपापचयी एंजाइम का पता लगाया जा चुका है जो कैलोरी नियंत्रण के द्वारा वृद्धावस्था को विलंबित करने में सक्षम होता है।

आमतौर पर वृद्धावस्था के अन्य कई कारण भी होते हैं परंतु इस क्षेत्र में प्रो. गैरी ने सर्वप्रथम जरावस्था की प्रेरक प्रक्रिया के आनुवंशिक रहस्य का पता लगाया है। उनके शोध दल ने विशेष रूप से SIR-2 (सर-2) वंशाणु का भी अध्ययन किया है जो आयु वर्द्धन में महत्वपूर्ण कुंजिका के समान होता है। गैरी ने एक जापानी शोधछात्र शिनिशिरो ईमाई के सहयोग से सर-2 तथा एक अन्य रसायन - "नेड" का मिश्रण तैयार करके कुछ प्रयोग किये। इनके परिणाम अत्यंत सकारात्मक और आश्चर्यजनक रूप से सफल रहे। प्रो. गेरी का विचार है कि यदि कोई जीवधारी न्यून मात्रा में भोजन ग्रहण करता है तो उस पाचन हेतु न्यूनमात्रा में ही नेड आवश्यक होगा जबकि SIR-2 को क्रियाशील करने हेतु अधिक मात्रा में नेड होना आवश्यक है अत: नेड की पूरकमात्रा SIR-2 को अधिक सक्रिय बना सकेगी। वस्तुत: SIR-2 जितनी अधिक दक्षता से जीव कोशिका में अवस्थित वंशाणुओं को शांत कर सकता है और उन्हें कार्यशील होने में विलंब उत्पन्न कर सकता है, कोशिका की जीवन अवधि उतनी ही अधिक हो सकेगी। इस परिकल्पना के आधार पर SIR-2 युक्त किसी भी औषधि के नियंत्रित प्रयोग और भोजन के कैलोरी नियमन के द्वारा दीर्घायु को प्राप्त करना संभव होने की पूर्ण आशाएं हैं।

2. मानव-प्रोटीन "प्रियोन" का पता चला

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक प्रकार की मानव प्रोटीन "प्रोयोन" के प्राथमिक छायाचित्रण करने में सफलता प्राप्त कर ली है। ये विशेष रूप से युग्मित रहने की स्थिति में "मैड काऊ" (Mad Cow) व्याधि और अन्य कई अल्पज्ञात व्याधियों की जन्मदाता हो सकती हैं। पहले वैज्ञानिकों की धारणा थी कि प्रोटीन के अणु सामान्यतया एकल ही होते हैं परंतु क्लीवलैंड स्वास्थ्य केंद्र तथा केस वेस्टर्न रिजर्व विश्वविद्यालय (CWRU) के शोध वैज्ञानिकों ने प्रियोन के एक युग्म को परस्पर संबद्ध पाया है। विश्व के कई अन्य शोधकर्ताओं ने भी यह ज्ञात करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार सामान्य हानिरहित प्रियोन परिवर्तित होकर घातक MCD व्याधि के कारक बन जाते हैं जो मस्तिष्क ऊतक को नष्ट कर सकते हैं। प्रियोनों की परस्पर संबद्धता इस प्रक्रिया का एक मध्यवर्ती चरण हो सकता है।

क्लीवलैंड स्वास्थ्य केंद्र में कार्यरत विवियनयी का विचार है कि संभवत: यह सर्व प्रथम दृष्टव्य एक अद्‌भुत घटना का ही एक चरण होता है। संप्रति, CWRU के चिकित्सा विद्यालय में कार्यरत विटोल्ड सुरेविज के सहयोग से इस घटना के अन्य चरणों का भी विवरण ज्ञात करने के प्रयास हो रहे हैं। अद्यतन प्राप्त जानकारी से यह सिद्ध हो गया है कि प्रियोन संबंधी रोगों के आसंजन का पता लगाने वाले परीक्षणों में चरणबद्ध युग्मन की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसे रोकने के लिए औषधियों की खोज आवश्यक है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका "नेचर" के नवीनतम अंक में प्रकाशित क्लीवलैंड स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकार्य विवरण के अनुसार एक अतिशक्तिशाली छायांकन तकनीक के प्रयोग द्वारा इस प्रोटीन के विवरण को ज्ञात करने में सहायता प्राप्त की गयी है। इसे एक्सकिरणीय मणिभीकरण (X-Ray Crystallography) कहा जाता है।

3. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) से सावधान

"समस्त मानव जाति सावधान - यांत्रिकयुग प्रारंभ हो चुका है।" ये उद्‌बोधन युक्त शब्द हैं विख्यात ब्रिटिश भौतिकशास्त्री स्टीफेन हॉकिंग्स के। इनका विचार है कि यदि मनुष्य को आज के समय में कृत्रिम बुद्धि (AI) के बढ़ते हुए ज्वार का सामना करना है तो उसे आनुवंशिकीय

अभियंत्रण (Genetic Engineering) का माध्यम अपनाकर स्वपरिष्करण करना आवश्यक होगा। "फोकस" नामक पत्रिका के साथ एक साक्षात्कार में प्रो. हॉकिंग ने यह स्पष्ट किया कि विज्ञान DNA की जटिलताओं का विस्तार कर सकता है और इस प्रकार मानव प्रजाति में सुधार का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। यद्यपि यह एक लंबी प्रक्रिया होगी पर हमें इसे स्वीकार ही करना होगा यदि हम जैविक तंत्रों को इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों से श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं।

हमारी बौद्धिक प्रवीणता की तुलना में संगणक (Computer) प्रत्येक 18 मास की अल्पावधि में ही अपनी कार्यक्षमता को द्विगुणित कर ले रहे हैं। यह वास्तव में विचारणीय विषय है कि ये यंत्र मानव से कहीं अधिक बौद्धिक प्रवीणता को प्राप्त करने में आज सक्षम होते जा रहे हैं। प्रो. हॉकिंग्स का कथन है कि हमें यथाशीघ्र ऐसी प्रोद्यौगिकी का विकास करना आवश्यक होगा जिसके द्वारा मस्तिष्क एवं संगणक के मध्य प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो सके ताकि कृत्रिम मस्तिष्क मानव दक्षता का विरोधी बनने के स्थान पर दक्षता में वृद्धि प्राप्त कर सके।

"A Brief History of Time" के लेखक प्रो. हॉकिंग 59 वर्षीय अध्येता हैं और संप्रति, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में सर आइजक न्यूटन पीठ पर आसीन हैं। वे लौगेहरिग व्याधि (LGD) से ग्रस्त हैं और एक चलंत चक्रीय कुर्सी तथा संगणक आधारित ध्वनि संश्लेषक प्रणाली के माध्यम से संभाषण, व्याख्यान तथा अपने विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति कर लेने में सक्षम हैं।

4. त्वचावर्ती कैंसर के लिए वंशाणु परीक्षण

त्वचा में अवस्थित कैंसर की पहचान के उद्देश्य से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने वंशाणु विविधता को (Melanoma) मेलानोमा के प्रति उत्तरदायी माना है। ब्रिटेन में यह व्याधि उग्रवर्धी कैंसर का एक स्वरूप है जहां मलिनीय कैंसर मेलानोमा के कारण प्रति वर्ष औसतन 1000 व्यक्ति काल-कवलित हो जाते हैं। विचित्र बात है कि त्वचावर्ती कैंसर सरलतम प्रकृति का कैंसर है जिससे मुक्ति पाना भी सरल होता है क्योंकि मात्र सूर्य की किरणों से सुरक्षा ही इसका उपचार है। ऑक्सफोर्ड के शोध वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया है कि मेलानोमा ग्रस्त रोगी के किसी एक वंशाणु में कुछ विद्रूपता अवश्य होती है और इस बारे में एक अंतरंगता का भी पता लगाया है जो कतिपय SNPs (Single Nucleotide Polymorphisms) तथा व्यक्तिविशेष में कैंसर के प्रादुर्भाव से संबद्ध होती है। SNPs सूक्ष्म वंशानुगत विविधताएं होती हैं जो मनुष्य के वंशानुक्रम का आधार होती हैं और इनका उपयोग किसी वंशाणु के पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानपरिवर्तन के अध्ययन हेतु किया जाता है। इन्हें कई प्राणघातक व्याधियों के प्रति संवेदनशील वृत्ति का द्योतक भी माना जाता है। इसी प्रकार के एक अध्ययन में वैज्ञानिकों ने 125 रोगियों पर प्रयोग किये और ज्ञात किया कि इनमें दो प्रकार की SNP विद्यमान रहती हैं- 'T' अथवा 'C' प्रकार की। मेलानोमा से आक्रांत व्यक्ति में 'T' प्रकार की विविधता के अधिक मात्रा में प्रमाण मिले जबकि 'C' प्रकार की विविधता वाले व्यक्तियों में कैंसर के विरुद्ध अधिक प्रभावी तत्त्व पाये गये।

इन अध्ययनों के माध्यम से यह अपेक्षाकृत सरल हो गया है कि एक ऐसे परीक्षण का विकास संभव है जिसके द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि किस व्यक्ति में T प्रकार की वंशाणु विदूषता उपस्थित है। ऑक्सफोर्ड के शोध दल का नेतृत्व प्रो. फेनोला वोजान रोस्का कर रही हैं। प्रो. हैरिस, जो ऑक्सफोर्ड के इंपीरियल कैंसर शोध फंड में अर्बुद विज्ञान के प्राध्यापक हैं, ने इसे अति महत्वपूर्ण बताया है। उन्होंने आशा व्यक्त की है कि इस प्रकार की DNA क्षति को प्रोत्साहित करने वाले अभिकर्ताओं के द्वारा त्वचावर्ती कैंसर का नियंत्रण संभव है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार इस परीक्षण के द्वारा ऐसे कैंसरों में कमी लाना संभव है। त्वचावर्ती कैंसर के रोगियों की संख्या में वर्ष 1970 की तुलना में लगभग 4 गुनी वृद्धि हो चुकी है क्योंकि अवकाश पैकेजों की लोकप्रियता में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में सूर्य के प्रकाश में मात्र 2 सप्ताह ही त्वचा को अनावृत्त रखना ब्रिटेन में एक वर्ष पर्यंत सूर्य प्रकाश में रखने के समान होता है। लगभग 6000 रोगियों की

पहचान प्रतिवर्ष त्वचा कैंसर के लिए की जा रही है । अल्पवयस्क व्यक्तियों में यह अल्पमात्रा में ही देखा गया है । 20-34 वर्ष की महिलाओं में सामान्यता पाये जाने वाले तिलों से युक्त लोगों में पारंपरिक तौर पर ऐसे कैंसर अधिक पाये जाते हैं । उदाहरण के तौर पर प्रसिद्ध अभिनेता रोजर मूर, अभिनेत्री एलिजाबेथ टेलर, क्लिंट ईस्टवुड और अमरीकी सांस्कृतिक सचिव टेस्सा जोरवेल आदि के शरीर में त्वचावर्ती कैंसर के उपस्थित होने की पहचान की जा चुकी है ।

संकलन : **कु. पूजा तिवारी**
भारतीय लाख्र अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, रांची - 834 010 (झारखंड)

5. कटिमाप व्याधियों के निदान में सहायक

वैज्ञानिक शोधकर्ताओं के अनुसार किसी व्यक्ति की कमर की नाप के आधार पर यह सरलता पूर्वक सुनिश्चित करना संभव होता है कि टाइप- 2 मधुमेह के समान गंभीर व्याधियों के कारण किस व्यक्ति को अधिक संकट हो सकता है । अमरीकी व्याधि नियंत्रण केंद्र एवं 10 अन्य देशों के स्वास्थ्य विभागों के द्वारा किये गये सर्वेक्षणात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि कटिमाप तथा शरीर भारसूची (BMI) मोटापे के अतिरिक्त भाराधिक्य विषयक जानकारी सुनिश्चित रूप से प्रदान करती है जो स्वास्थ्यपरक संकटों का कारण हो सकती हैं । ये सरल, मितव्ययी तथा विश्वसनीय निदान विधाएं रोगी के स्वास्थ्य मूल्यांकन में सहायता प्रदान करती हैं । अमरीकी व्याधि नियंत्रण केंद्र (CDC) के निदेशक डॉ. फ्रैंक विनीकोर ने यह स्पष्ट किया है कि शारीरिक मापदंडों और व्याधिग्रस्तता में घनिष्ठ संबंध होता है ।

साधारणतया, अधिक कटिमाप वाले एक जैसे रोगियों में टाइप-2 मधुमेह के तुलनात्मक स्तर विद्यमान होते हैं जिनका आयुवर्गों से कोई संबंध नहीं होता है । महिलाओं में जैसे जैसे कटिमाप में वृद्धि होती है, मानसिक व्याधियों या हृदय रोगों की संभावना बढ़ती जाती है । राष्ट्रीय जनस्वास्थ्य एवं पर्यावरण सुरक्षा संस्थान, विल्टहोवेन (नीदरलैंड) के प्रो. जे. सी. सीडेल के शोधदल ने यह अनुशंसा की है कि चिकित्सकों को शरीरभार सूची और कटिमाप दोनों की सहायता से रोगियों का निदान करना अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि अधिकांश मामलों में इनके द्वारा स्वास्थ्य विषयक आश्चर्यजनक सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं । इस विधा के द्वारा रोगी स्वयं ही अपना स्वास्थ्य परीक्षण भी कर सकते हैं ।

6. विटामिन-सी के प्रयोग से मृत्युदर में कमी संभव

ब्रिटिश वैज्ञानिकों के अनुसार हृदय रोगों और अन्य संघातीय व्याधियों के बचाव हेतु ताज़े फलों और शाक-सब्जियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करना श्रेयस्कर होता है। व्यायाम, स्वास्थ्यप्रद भोजन, धूम्रपान का त्याग, अल्कोहलयुक्त पेयों का न्यूनमात्रा में सेवन तथा विटामिन-C की प्रचुरता वाले शाकों और फलों के नियमित सेवन से मृत्यु दर में कमी लाना निश्चित रूप से संभव होता है । विटामिन-सी अथवा ऐस्कॉर्बिक अम्ल का प्रयोग सामान्यतया प्रतिरक्षातंत्र को सशक्त करने हेतु किया जाता है ताकि प्रतिश्याय (Common Cold) और फ्लू से रक्षा हो सके । इससे अतिरिक्त यह एक अनाक्सीकारक (Anti-oxidant) भी है जो शरीर में उत्पन्न होने वाले हानिकारक पदार्थों से विमुक्त होने वाले मूलकों (Radicals) का विनाश करने में भी प्रभावी भूमिका अदा करता है ।

शोध अध्ययनों से यह भी प्रमाण मिले हैं कि विटामिन सी हमारे हृदय और अन्य रक्त प्रवाही व्याधियों के घातक संकटों में भी अशातीत रूप से कमी लाता है । प्रो. के. टी. रवाब के नेतृत्व में शोध अध्ययन रत कैंब्रिज विश्व विद्यालय के शोध एकांश ने यह ज्ञात किया है कि भोजन में विटामिन सी की प्रचुरता पुरुषों और महिलाओं दोनों की मृत्यु दर में कमी लाने में सक्षम होती है । विटामिन सी शरीर को कई अन्य क्रियाओं को भी प्रभावित करता है और हारमोन्स तथा कोलेजन के उत्पादन का महत्वपूर्ण अभिकर्ता भी होता है जो हमारे शरीर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रोटीनें होती हैं । ताजे फलों अंगूर, केला, सेब, मौसंबी, नींबू, आंवला, संतरा आदि में यह विटामिन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है । हरे शाकों - पालक, मेथी, सोया, बथुआ, कुल्थी, चना, सरसों, अमरनाथ, चौलाई इत्यादि में भी पर्याप्त मात्रा में विटामिन-सी पाया जाता है ।

एक शोध अध्ययन के अंतर्गत लगभग 20,000 स्त्री-पुरुषों पर संपन्न किये गये एक कार्यक्रम में यह ज्ञात हुआ है कि विटामिन-सी के स्तर मृत्युदर के व्युत्क्रमानुपाती होते हैं। उच्चतम विटामिन-सी के स्तरों वाले व्यक्तियों की मृत्यु दर में 50% ह्रास दृष्टिगोचर हुआ है। पोषाहार विशेषज्ञ प्रो. वेल्श के अनुसार फल तथा सब्जियों में पाये जाने वाले विटामिन-सी का महत्व अवश्य है परंतु इसमें विद्यमान कई अन्य अवयव भी जीवनरक्षक हो सकते हैं।

नित्यप्रति ताजे फलों और हरे शाकों का सेवन निश्चय ही मृत्यु की संभावना कम करता है। इनके प्रयोग में की गयी 50 ग्राम की वृद्धि मृत्यु दरों में लगभग 20% की कमी लाने में सक्षम पायी गयी है। अभी तक यह नहीं प्रमाणित हो सका है कि विटामिन-सी की गोलियों या चूर्ण का प्रयोग भी उतना ही प्रभावी है।

संकलन : **विजया तिवारी**
द्वारा - **आर. पी. तिवारी**
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, रांची - 834 010 (झारखंड)

डाल्टन का परमाणु हुआ 200 वर्ष का

आज 8 वीं - 9 वीं कक्षा के विद्यार्थी को डाल्टन का परमाणु सिद्धांत पता है। सिद्धांत इतना सरल सा लगता है कि कई विद्यार्थी इस कल्पना में छिपी क्रांति का अंदाजा नहीं लगा पाते। तो आइए, इस कल्पना की 200 वर्षों की मंगलपूर्ति पर एक बार फिर डाल्टन की कल्पना का ठीक से जायजा ले लें।

डाल्टन से भी पूर्व ईसापूर्व 150 में भारत के कणाद मुनि ने कण की कल्पना की थी। उन्होंने अपने "वैशेषिक दर्शन" में स्पष्ट कहा है कि ईश्वर ने कण-कण जोड़ कर सृष्टि की रचना की। राहुल सांकृत्यायन अपनी पुस्तक "दर्शन-दिग्दर्शन" में कणाद को परमाणुवादी कहते हैं क्योंकि जिस कण की व्याख्या कणाद ने की, उसी का बड़ा, व्यापक रूप करीब 2000 वर्ष बाद डाल्टन ने पेश किया। कुछ भी हो, डाल्टन ने जिस स्पष्टता और संपूर्णता में अविभाज्य और सूक्ष्म परमाणु की कल्पना पेश की, वह काबिले तारीफ है। उन्होंने कहा था कि हर मूलतत्त्व एकसमान परमाणुओं से रचा है, परंतु अलग-अलग मूलतत्त्वों के परमाणु अलग-अलग भार के होते हैं। गौर से देखें तो यह निष्कर्ष सरल सा लगता है परंतु इसके पीछे मूलतत्त्वों की रासायनिक क्रियाओं का गहरा अध्ययन ज़रूर छिपा है। आखिर क्यों एक तत्त्व का एक भाग अन्य तत्त्व के दो भागों से ही संयोजन करता है ? उत्तर स्पष्ट था कि एक परमाणु का संयोजन 2 या तीन परमाणुओं से हो रहा है, मगर इस निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए एक दृष्टि चाहिए, महान वैज्ञानिक दृष्टि। दो सौ वर्ष पहले विज्ञान के बाल्यकाल में ऐसी दृष्टि सचमुच अनोखी थी। तभी आज भी हम इंग्लैंड के इस महान रसायन वैज्ञानिक जॉन डाल्टन को पढ़ते-पढ़ाते हैं। 1802 में प्रतिपादित इस सिद्धांत ने अगले वर्ष प्रकाशित होने पर विज्ञान जगत में तहलका मचा दिया था। सवाल आज यह नहीं है कि बाद में डाल्टन के परमाणु को तोड़कर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन अथवा विखंडन-ऊर्जा मिली और परमाणु अविभाज्य नहीं रहा, सूक्ष्मतम भी नहीं रहा। सवाल यह भी नहीं कि एक ही तत्त्व के परमाणुओं में आइसोटोप मिले। सवाल तो यह है कि 200 वर्ष पूर्व यह सरल कल्पना क्रांतिकारी थी और परमाणु की वही कल्पना 1766 में जन्मे डाल्टन ने दी थी जो आज भी वैध और प्रासंगिक है।

डॉ. देवकी नंदन
A-1/304, ऋषिकेश, स्वामी समर्थ नगर, अंधेरी, मुंबई - 400 053

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

वर्ष 2000-01 एवं 2001-02 की वार्षिक रिपोर्ट

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की 32 वीं (2000-01) व 33 वीं (2001-02) (आंशिक) रिपोर्ट आपके सम्मुख रखी जा रही है। परिषद के सभी कार्य सुचारु रुप से चलते रहे। वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में देरी हो गयी है लिए क्षमा चाहता हूं। इस दौरान संपन्न विभिन्न कार्यों के विवरण इस प्रकार हैं।

1) संगोष्ठियां :

(क) उच्च रक्त दाब

यह एक दिवसीय संगोष्ठी 25 मई 2000 के दिन अणुशक्तिनगर में ट्रेनिंग स्कूल हॉस्टल के सभागृह में आयोजित की गयी। सायलेंट किलर की तरह जानी गयी इस बीमारी के कारण, सावधानियां एवं विभिन्न उपचार पद्धतियों पर वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। ऐलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेदी व प्राकृतिक चिकित्सकों की वार्ताओं को देर शाम तक करीब 300 प्रतिभागियों ने सुना और प्रश्नोत्तरी में भाग लिया। परिषद की मानव स्वास्थ्य श्रृंखला की इस कड़ी में पहली बार मुंबई के बाहर से आये वक्ता डॉ. पी. डी. केतकर (उर्लीकंचन केंद्र, पुणे) ने भी भाग लिया। संगोष्ठी का संयोजन डॉ. शैलेंद्र कुमार कुलश्रेष्ठ व डॉ. आशा दामोदरन ने किया। डॉ. आशा दामोदरन ने जीवन शैली में सकारात्मक परिवर्तन और योग द्वारा संभावित लाभों पर रोचक वार्ता भी दी।

(ख) रिएक्टर हस्तन प्रणालियां

यह एक दिवसीय संगोष्ठी 9 जून 2000 के दिन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में आयोजित की गयी। देश भर के रिएक्टरों की ईंधन हस्तन मशीनों की बनावट, कार्यप्रणाली, उनके प्रयोग में कंप्यूटर की सार्थकता व रेडियो सक्रिय भुक्त ईंधन के हस्तांतरण आदि विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा वार्ताएं दी गयीं। अपने उद्घाटन भाषण में डॉ. अनिल काकोडकर ने परिषद द्वारा अत्यंत जटिल तकनीकी विषय पर आयोजित इस संगोष्ठी की प्रशंसा की और विषय के वरिष्ठतम अभियंता तामिल भाषी श्री ए. सनतकुमार की अत्यंत रोचक व गंभीर मुख्य वार्ता को सुना। संगोष्ठी में कुल ग्यारह वार्ताएं दी गयीं और इसका संयोजन श्री राम गोपाल अग्रवाल और श्री नंद लाल सोनी ने किया।

(ग) आगामी दशक में विज्ञान व तकनीकी के अग्रगामी क्षेत्र

मुंबई के बाहर परिषद द्वारा यह द्वि-दिवसीय संगोष्ठी 3 व 4 अगस्त 2000 को मैसूर विश्व विद्यालय और भारतीय भाषा संस्थान के सहयोग से मैसूर (कर्नाटक) में आयोजित की गयी। भारतीय भाषा संस्थान सभागृह में मैसूर के विभिन्न अनुसंधान व शैक्षणिक संस्थानों के 150 प्रतिभागियों ने इसमें भाग लिया। मैसूर की रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला, केंद्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी संस्थान व विरल पदार्थ संयत्र ने इसमें सक्रिय भाग लिया।

अपने उद्घाटन भाषण में, मैसूर विश्व विद्यालय के उपकुलपति श्री एस. एन. हेगडे ने मैसूर में हिंदी में आयोजित प्रथम वैज्ञानिक संगोष्ठी के लिए हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद को बधाई दी। पांच सत्रों में कुल सोलह वार्ताएं दी गयीं तथा सभी वार्ताओं के अंत में प्रतिभागियों द्वारा हिंदी में प्रश्नोत्तरी ने संगोष्ठी को गरिमा प्रदान की। थोरियम का संभावित उपयोग करने वाले भारत के इक्कीसवीं सदी के प्रस्तावित प्रगत भारी पानी रिएक्टर पर हर्षद प्रसाद व्यास की वार्ता को सराहा गया। संगोष्ठी संयोजन श्री पु. शिवानंद राव तथा अन्य आवश्यक जिम्मेदारी श्री रमेश चंद्र पंत ने संभाली।

(घ) सूचना तकनीकी

सहकर्मियों के लिए यह एक दिवसीय संगोष्ठी "सूचना तकनीकी" पर 14 सितंबर 2000 के दिन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में आयोजित की गयी। राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष के समापन पर आयोजित इस संगोष्ठी में 385 प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का उद्घाटन मुख्य अतिथि व परमाणु ऊर्जा नियमन बोर्ड के अध्यक्ष प्रो. एस. पी. सुखात्मे ने तथा अध्यक्षता श्री बी. भट्टाचारजी ने की। उद्घाटन समारोह में हिंदी शपथ के बाद भारत के गृह मंत्री व अध्यक्ष परमाणु ऊर्जा आयोग के संदेश पढ़े गये। इसके बाद परिषद के सदस्यों श्री राम निवास आर्य, श्री. राम प्रसाद व डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला द्वारा हिंदी

रूपांतरण की गयी पुस्तक "परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के 50 वर्ष" का विमोचन मुख्य अतिथि के कर कमलों से संपन्न हुआ। तदुपरांत भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र व शब्दावली आयोग दिल्ली के विशेषज्ञों के सहयोग से तैयार की गयी 'रेडियोसक्रिय अपशिष्ट प्रबंधन शब्दावली' का विमोचन श्री बी. भट्टाचारजी ने किया। संगोष्ठी में "सूचना तकनीकी" पर सरल हिंदी भाषा में सात वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। संगोष्ठी संयोजन डॉ. राज नारायण पांडेय व सुश्री साधना हेमरजानी ने किया।

(ड) नेत्र - सावधानियां, उपचार व आधुनिकतम चिकित्सा विकल्प

परिषद द्वारा आयोजित स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर संगोष्ठियां परमाणु ऊर्जा विभाग के परिवार के सदस्यों में अत्यंत लोकप्रिय हैं। शुक्रवार 20 जुलाई 2001 के दिन अणुशक्तिनगर में ट्रेनिंग स्कूल हॉस्टल के सभागृह में उपरोक्त विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें करीब 300 प्रतिभागियों ने भाग लिया। एक दिन की संगोष्ठी में नेत्र विशेषज्ञों की छः वार्ताओं के अलावा नेत्रदान के पुण्य कार्य से 25 वर्षों से जुड़े डॉ. शांता मोटवाने व श्री एस. वी. आगाशे ने भी इस कार्य की आवश्यकता पर वार्ता दी। अंत में प्रतिभागियों के प्रश्नों का समाधान हमारे अस्पताल के नेत्र विशेषज्ञ डॉ. वी. करेरा व डॉ. स्नेहल नाडकर्णी ने किया। संगोष्ठी संयोजन श्री विपुल सेन व श्री जय प्रकाश त्रिपाठी ने किया।

(च) कृषि प्रौद्योगिकी - नयी दिशाएं

मुंबई के बाहर परिषद द्वारा आयोजित यह ग्यारहवीं वैज्ञानिक संगोष्ठी शिमला (हिमाचल प्रदेश) में 3-4 सितंबर 2001 को केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान के साथ मिल कर की गयी। शिमला व आसपास के शिक्षण व अनुसंधान संस्थानों के 150 प्रतिभागियों हेतु इस संगोष्ठी में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के जैव वर्ग तथा कंप्यूटर प्रभाग और केंद्रीय आलू संस्थान के विशेषज्ञों द्वारा 15 वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। शिमला में हिंदी में आयोजित इस प्रथम वैज्ञानिक संगोष्ठी का स्वागत किया गया।

संगोष्ठी की एक विशेषता, उदघाटन समारोह में परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष व प्रसिद्ध नाभिकीय वैज्ञानिक डॉ. आर चिदंबरम् द्वारा प्रस्तुत वार्ता "पोखरण परीक्षण के वैज्ञानिक पहलू" रही। आलू अनुसंधान संस्थान के खचाखच भरे सभागृह में श्रोताओं ने इस सारगर्भित वार्ता को सुना। उदघाटन समारोह की अध्यक्षता मेजर जनरल पी. एस. ठाकुर (AVSM) ने की। शिमला विश्व विद्यालय के उप कुलपति डॉ. एस. के. गुप्ता एवं भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के श्री अनिल कुमार आनंद विशिष्ट अतिथि थे। संगोष्ठी संयोजन आलू अनुसंधान संस्थान के डॉ. एस. एम. पाल खुराना (हाल ही में आप संस्थान के निदेशक नियुक्त हुए हैं) तथा भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के डॉ. एस. सी. सभरवाल ने किया।

(छ) पर्यावरण संरक्षण - हमारा उत्तरदायित्व

सहकर्मियों के लिए यह एक दिवसीय संगोष्ठी 23 अक्तूबर 2001 के दिन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में आयोजित की गयी। यह वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण के रूप में मनाया जा रहा था। इसको ध्यान में रख कर 80 प्रतिशत प्रतिभागी व वार्ताकार महिलाएं ही शामिल की गयीं। वर्ग 'ग' तथा 'घ' के केंद्र के कर्मचारियों के लिए सरल हिंदी में डॉ. रमोला डीकुन्हा, सुश्री नीता गुप्ता (NPCIL), डॉ. जी. जी. पंडित, डॉ. सुधा राव, बी. एन. माहेश्वरी और डॉ. जीयालाल राम जैसवाल राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (National Oceanography Institute) ने वार्ताएं प्रस्तुत कीं। कार्यक्रम का उद्घाटन श्री ऑन्टोनी डि सा, नियंत्रक, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, अध्यक्षता श्री सुरेंद्र कुमार शर्मा तथा प्रमुख वार्ता डॉ. उमेश चंद्र मिश्रा ने दी। संगोष्ठी संयोजन सुश्री के. उमाशंकरी व सुश्री साधना हेमरजानी ने किया।

2) प्रश्नमंच

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने 14 नवंबर 2000 व 4 जनवरी 2002 के दिन परमाणु ऊर्जा केंद्रीय विद्यालय के नवीं व दसवीं कक्षाओं के छात्रों के लिए "प्रश्न मंच" का आयोजन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय सभागृह में किया। छः से सात सौ छात्रों को हिंदी के माध्यम से नाभिकीय व अन्य वैज्ञानिक विषयों की जानकारी देने की यह सफल गतिविधि, केंद्रीय स्कूल के अध्यापकों व अन्य अधिकारियों की सहायता से तथा हमारे केंद्र की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों की सक्रिय भूमिका से ही संभव हो पायी।

प्रश्नोत्तरी मंच का संचालन श्री दिनेश कुमार शुक्ल और कंप्यूटर उपकरणों व सॉफ्टवेयर का भार श्री जी. भारद्वाज की टीम ने संभाला । परिषद इस कार्य से जुड़े सभी व्यक्तियों की आभारी है ।

3) नोबेल पुरस्कार किसे और किसलिए ?

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संचालित यह महत्वपूर्ण कार्यक्रम वर्ष 2000 के नोबेल पुरस्कारों के बारे में जानकारी देने हेतु 8 मार्च 2001 आयोजित किया गया । भौतिकी, रसायनिकी और जैविकी में पुरस्कार विजेताओं के कार्य पर डॉ. बृज मोहन अरोड़ा (टी.आई.एफ.आर.), डॉ. जे. वी. याख्मी (भा.प.अ. केंद्र) व डॉ. मालिनी कृष्णन (भा.प.अ. केंद्र) ने प्रकाश डाला ।

4) वैज्ञानिक

त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का प्रकाशन नियमित रुप से चला । वर्ष 2000-01 में तीन व 2001-02 में दो अंक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं । संपादन मंडल के सभी सदस्य इसके लिए बधाई के पात्र हैं ।

"डॉ. भाभा हिंदी विज्ञान वैज्ञानिक लेख प्रतियोगिता 2000" का आयोजन पूर्ववत किया गया । हालांकि इसमें प्रविष्टियों की संख्या आशानुरुप नहीं रही परंतु रचनाओं का स्तर संतोषजनक था ।

5) "परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के 50 वर्ष" पुस्तक का हिंदी रूपांतर

सर्व श्री सी. जी. सुंदरम्, एल. वी. कृष्णन व टी. एस. आयंगार लिखित पुस्तक "भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के 50 वर्ष" का हिंदी रुपांतरण का कार्य श्री राम निवास आर्य, डॉ. राम प्रसाद व डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला द्वारा पूर्ण किया गया । परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा किये गये प्रकाशन को परिषद के तत्कालीन अध्यक्ष श्री ए. के. आनंद के प्रयत्नों से राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष के समापन तक उपलब्ध करा दिया गया । परिषद द्वारा किये गये प्रचार प्रसार प्रयत्नों में यह अवश्य एक मील का पत्थर कहलायेगा ।

6) नयी कार्यकारिणी

वर्ष 2001-02 व 2002-03 की कार्यकारिणी के चुनाव की प्रक्रिया 22 मार्च 2001 को प्रारंभ हो कर 19 अप्रैल 2001 तक समाप्त हो गयी । इस कार्य के लिए हम डॉ. मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव के आभारी हैं । नयी कार्यकारिणी ने 13 जुलाई 2001 को कार्यभार संभाला ।

7) विविध

अ) सहकर्मियों के लिए "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन इस दौरान नहीं हो पाया ।

ब) यद्यपि विभिन्न संगोष्ठियों में यथा संभव वार्ताकारों ने भाग लिया परंतु राजभाषा वार्ताओं का आयोजन इस दौरान भी नहीं किया जा सका ।

स) "वैज्ञानिक" में लगातार सूचना प्रकाशित करने के बाद भी मोनोग्राफ लिखने में कोई प्रगति नहीं हो पायी । परिषद के कुछ सेवा निवृत सदस्यों की सहायता से इस पर शीघ्र ही कार्य प्रारंभ करने की योजना है ।

द) पूर्व आम निगम सभा के निर्णयानुसार पुराने आवश्यक दस्तावेजों को जमा कर शेष नष्ट कर दिये गये हैं । अगर किसी सदस्य के पास कुछ कागजात व फोटों हों तो सचिव के पास भेजने का कष्ट करें ।

इ) आगामी वर्ष के लिए निम्न कार्यक्रम विचाराधीन हैं ।

- मानव स्वास्थ्य श्रृंखला के लिए "मन" पर गोष्ठी की तैयारी चल रही है ।
- इस वर्ष जुलाई तक "अभियांत्रिकी के आधुनिकतम विश्लेषीय साधन" विषय पर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के केंद्रीय परिसर सभागृह में संगोष्ठी का निर्णय लिया गया है । अब तक 5 लेख प्राप्त हो चुके हैं । संगोष्ठी का अंतिम रुप तैयार किया जा रहा है । विषय अत्यंत उच्च तकनीकी क्षेत्र का होने के कारण इस पर 'वैज्ञानिक' का विशेष अंक निकालने की योजना है ।
- मुंबई के बाहर परिषद द्वारा वैज्ञानिक संगोष्ठी आयोजन के लिए भुवनेश्वर व उत्तरांचल के प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं ।

8) सदस्यता : सदस्य संख्या इस प्रकार रही ।

	2000-01	2001-02
आजीवन	1109	1119
संस्थागत	117	117
साधारण सदस्य	30	30

'वैज्ञानिक' पर व्यय लगातार बढ़ता जा रहा है । सभी सदस्यों को यह पत्रिका भेजी जाती है । आजीवन सदस्यता जो आजकल 400 रुपये है, 1990 तक 50 रूपये व 1996 तक 100 रुपये थी । पुरानी सदस्यता के

ब्याज से डाक का व्यय भी नहीं निकल पाता है । अतः पिछले 'वैज्ञानिक' के संपादकीय में पुराने सदस्यों से नयी व पुरानी सदस्यता के अंतर की शेष राशि भेजने की अपील की गयी है । **(कृपया इस अपील पर विशेष रूप से ध्यान देने का कष्ट करें, परिषद आपकी आभारी रहेगी ।)**

9) संस्था के कुछ कर्मठ कार्यकर्ता भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से सेवा निवृत हो कर हमसे विदा हुए । इनमें से श्री रामनिवास आर्य, डॉ. सत्य नारायण त्रिपाठी व श्री अनिल कुमार आनंद के योगदान को वर्षों याद रखा जायेगा । जनवरी 2002 के अंत में मानव स्वास्थ्य श्रंखला से जुड़ी डॉ. आशा दामोदरन भी सेवा निवृत हो रही हैं । इन सभी को शुभकामनाएं । आशा करते हैं कि ये सब आगे भी परिषद के कार्यों में अपना योगदान देते रहेंगे ।

10) परिषद अपने कार्यों को सुचारु रूप से संपन्न कर पायी इसके लिए हमें भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के निदेशक और नियंत्रक का संरक्षण लगातार मिला । अध्यक्ष श्री सुरेंद्र कुमार शर्मा तथा उपाध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सूरी का मार्गदर्शन, अन्य सदस्यों और विभिन्न कार्यक्रमों के संयोजकों का निष्ठापूर्वक सहयोग मिला । अध्यक्ष ट्रेनिंग प्रभाग, पुस्तकालय व सूचना प्रभाग, हिंदी कक्ष ने हमेशा हमारी आवश्यक मदद की । कितने ही हिंदी प्रेमियों ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रचार प्रसार के कार्य में हाथ बंटाया । हम इन सभी के अत्यंत आभारी हैं ।

(र. चं. पंत)
सचिव, हि.वि.सा.प.

कुछ फूल : कुछ कांटे

अक्तूबर-दिसंबर 2001 अंक मिला । धन्यवाद । इस अंक के साथ "वैज्ञानिक" ने अपने जीवन के 33 मंगलमय वर्ष पूरे किये और 34 वें वर्ष में प्रवेश किया है । आपको व सभी मित्रों-सहयोगियों को हार्दिक बधाई जिन्होंने वर्षों से "वैज्ञानिक" का लालन-पालन बड़े 'प्रेम' से किया है । इसी 'प्रेम' शब्द में परिश्रम, प्रतिबद्धता, ज्ञान, निःस्वार्थ आदि शब्द कुदरती तौर पर समाहित हैं, इसमें संदेह नहीं ।

इस अंक के सभी लेख तो नहीं पढ़ पाया हूं, परंतु 'संपादकीय' सबसे पहले पढ़ा । नोबेल पुरस्कारों की सदी को आपने सक्षमता से कवर किया है । इसमें दी गयी तालिका बहुत कुछ कह रही है । विज्ञान के क्षेत्र में दिये गये कुल 479 नोबेल पुरस्कारों में भारत के हिस्से में सिर्फ 3 ही आये हैं, जोकि सोचने का विषय है । खैर, संपादकीय उत्तम है । सच तो ये है कि अब मैं हर अंक का संपादकीय लेख ही पहले पढ़ता हूं । दूसरी बात- टिप्पणियों / विज्ञान समाचारों को नियमित देते रहिए क्योंकि इन छोटे-छोटे समाचारों से विज्ञान की नयी दिशाओं का ज्ञान/आभास हो जाता है । नयी वैज्ञानिक गतिविधियों के संदर्भ में मैं डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला द्वारा दिये समाचार भी अवश्य पढ़ता हूं ।

मेरा निवेदन है कि बहुत ज्यादा टेक्निकल किस्म के लेख सी एस आई आर की पत्रिकाओं को भिजवा दिया करें (उनका जर्नल 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका' इसी उद्देश्य के लिए है) । मेरा संकेत "कण क्षेपण द्वारा विलेपन" तथा "चूनामय परासूक्ष्म प्लवकों का भूविज्ञानीय महत्व" जैसे लेखों से है जोकि सार्थक साहित्य है परंतु "वैज्ञानिक" के आम पाठक के लिए मुश्किल है । इनके स्थान पर आम पाठक को चाहिए अंतरिक्ष स्टेशन अल्फा, आतंकवाद से जूझते विज्ञान, चीन कब चंद्रमा पर पहुंचेगा (भारत इस बारे में कहां है), 25 वर्ष बाद का भोजन कैसा होगा, क्या एकदिन सचमुच हर मनुष्य 100 वसंत देख पायेगा आदि-आदि विषयों पर दिलचस्प लेख । मेरा निवेदन है कि आप अच्छे लेखकों को ऐसे दिलचस्प लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित/आमंत्रित करें । और लतीफे आदि भी जरुर डालें, ताकि हास्यरस का भी समावेश रहे । और हां, उन्हीं कविताओं को छापें जो सच में सार्थक हों ।

डॉ. देवकी नंदन
A-1/304, ऋषिकेश, स्वामी समर्थ नगर,
अंधेरी, मुंबई - 400 053

सुझावों के लिए धन्यवाद । विज्ञान समाचार, टिप्पणियां तो "वैज्ञानिक" के स्तंभ हैं ही, कविताओं, कथाओं से भी कोई परहेज नहीं है । यदि वैज्ञानिक चुटकुले भेजे जायें तो उनको अवश्य स्थान मिलेगा । "वैज्ञानिक" में कुछ तकनीकी लेखों का सारपूर्ण समावेश इसे आम पत्रिकाओं से अलग श्रेणी में रखता है । आम पाठक के लिए अधिक रोचक लेखों को देने से संबंधित आपका सुझाव विचारणीय है - सं

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1] (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जाये-
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'इसी से', 'तुम्हीं को', 'सभी को'

2] पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें ।

3] संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4] जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि ।
दृष्टव्य है कि 'भाई', 'लाई', 'पाई' आदि संज्ञाएं हैं । भविष्यकाल में ये रूप निम्न प्रकार होंगे - आयेगा, पायेगा, लायेगा, जायेगा आदि । आवेगा, जावेगा आदि प्रयोग ठीक नहीं हैं ।

5] 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए ।

6] 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह ।
'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये ।

7] 'एसा/ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये ।
'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । *उदाहरण* - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें ।

8] आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए', 'रखिए' आदि ।

9] अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए - वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग), व न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं ।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि ।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे ।

10] एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं । जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये ('हंसिए' आदरार्थ आज्ञा रूप होगा)

11] संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है । जैसे, अस्थायी, बाजपेजी, उत्तरदायी आदि । इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक ।

12] चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की ज़गह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये । जैसे, अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि ।

13] संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिया जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री कुलवंत सिंह द्वारा वन अप प्रिंटर्स, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348 / 556 6284) में मुद्रित व प्रकाशित ।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है । इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है । परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे । विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूपरेखाएं आमंत्रित हैं । जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो ।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप, रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों । उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- नाभिकीय रिएक्टर
- नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ईंधन पुनर्संसाधन
- अन्य संबद्ध कार्य

रूपरेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी । मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे । इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें :

श्री रमेश चंद्र पंत, अध्यक्ष, रिसर्च रिएक्टर मेन्टेनेंस डिवीजन (RRMD),
ध्रुव रिएक्टर, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085

E-mail : rc-pant@hotmail.com / rcpant@apsara.barc.ernet.in

Fax : 022-550 5311